मानव मन्दिर

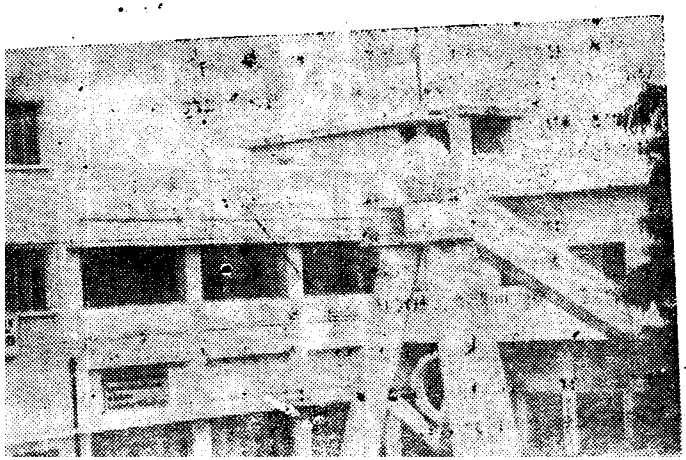

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

FORM

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur.
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Hoshiarpur.
Editor's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavata Mandir, Sutehri Road Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Prem Parkash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and published by : Prem Praksh Sharma at Shiv Dev Rao Press Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग 21-9-97 को होगा ।

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक :

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

|||

सम्पादक :
श्री प्रेम प्रकाश शर्मा

वर्ष 25 | बुधवार 10 सितम्बर, 1997 | संख्या 5

राधास्वामी योग
दूसरा भाग

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

योग की प्रथम विधि

इकत्तीसवां वचन

अपने आप की समझ स्थूल अवस्था या जाग्रति में

यहां जो बात कही जाती है वह केवल समझदार आदमी के लिए है। जिनको समझ नहीं है उनके लिए कहना सुनना अभी व्यर्थ है। हम भी सन्तोष कर रहे हैं और उनको भी सन्तोष के साथ प्रतीक्षा करने की आवश्यकता है। जब वह समझ के घाट पर आयेंगे, उस समय हमारी बात कीं समझ उनमें आ जायगी। बिना समानता, परस्पर प्रेम और अनुसारता के मेल नहीं मिल सकता। इस कारण से वाणी केवल उन्हीं पर प्रभाव डाल

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

सकती है जो किसी अंश तक एक विचार और एक स्वभाव के हो गए हैं। जब हम तमाम मनुष्य को एक व्यवसाय के, एक विचार के और हमदर्द नहीं बना सकते तो सबको एक धर्म का कैसे बना सकते हैं ? वह इस समय असम्भव है।

पहिले वचनों में हमने कहा है कि तुम ही सच्चिदानन्द हो और सत्त, चित्त, आनन्द तुम में ही है। इसका एक आध दृष्टान्त देकर हम फिर दूसरी बात का वर्णन करेंगे क्योंकि अभी जो कह रहे हैं वह केवल भूमिका मात्र है। इसकी व्याख्या आगे चलकर करेंगे।

सच्चिदानन्द में तीन शब्द हैं— सत, चित, आनन्द या आनन्द चित और सत। पहिले आनन्द को ले लो।

आनन्द सुख है। सुख दुनिया में कई तरह पर मिलता है। खाने का सुख, पीने का सुख, भोग का सुख। इस सुख की इस दुनिया में तीन श्रेणियां हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण। स्थूल सुख शारीरिक है, सूक्ष्म सुख मानसिक है और कारण सुख है। इन शब्दों को याद रक्खो ताकि स्थान पर वचनों के अध्यात्मिक असली भाव को ज्यों का त्यों समझ सको।

शारीरिक सुख जाग्रति में प्राप्त होता है। जाग्रति अवस्था वह है जिसमें शरीर की इन्द्रियां गतिमान रहकर सुख भोगती हैं। जिहवा को रस का सुख, आंखों को रूप

का सुख, कानों को राग का सुख, नाक को गन्ध का सुख और चमड़े को छूने का सुख मिलता है। पांच अर्थात् जिहवा, आंख, नाक, कान और चमड़ा पांच इन्द्रियां हैं और इनके पांच भोग, रस, रूप, शब्द, गन्ध और स्पर्श हैं। जब तुम जागते हो तब ही तक इनका सुख भोगते हो। इनको अच्छी तरह सोचकर समझ लो।

अब यह देखो कि आया इन इन्द्रियों में सचमुच सुख भोगने की शक्ति है या नहीं ?

विचार करने पर प्रतीत होता है कि इन्द्रियां सुख नहीं हैं केवल सुख भोगने के यन्त्र हैं। यह क्यों ? क्योंकि जहां नींद आ गई इन्द्रियां बेकार और निरर्थक हो जाती हैं। सोने वाले की जिहवा पर मिठाई रख दो। क्या उसे चखने के स्वाद का सुख मिलेगा ? कभी नहीं। न वह तुम्हारी बात को सुनेगा। न दुर्गन्ध सुगन्ध को सूंघ सकेगा। न तुमको हाथ से छू सकेगा। यह तुमको विश्वास है।

इस प्रकार यदि किसी को अचेतन्यता आ जाय तब भी वही दशा होगी। यदि वह बीमार हो जाय तो उस दशा में भी किसी अंश में अचेतन्यता आ जायगी। ऐसा क्यों होता है ? यदि अंगों या इन्द्रियों में सुख भोगने की असली शक्ति होती तो वह नींद में, बेहोशी से और बीमारी में भी भोग के पदार्थ का स्वाद ले सकतीं। लेकिन यह बात देखने में नहीं आती। इससे साफ प्रगट है कि

इनमें स्वयं सुख भोगने की शक्ति नहीं है। यह किसी और शक्ति से शक्तिशाली हो रहीं थीं। वह शक्ति कहीं चली गई और यह बेकार, गतिहीन और बेजान हैं। होने को तो अब भी हैं मगर बिल्कुल निकम्मी !

सोचो, इनकी शक्ति चली कहां गई ? बात यह थी कि शक्ति किसी अन्य स्थान से आई थी और वह धार की सूरत में आई थी। जब तक हाथ पांव में धार थी तब तक वह सुख के कार व्यवहार के यन्त्र में थीं। शक्ति चली और वह बेकाम हो गईं।

इस धार की समझ बिल्कुल साधारण सी बात है। हाथ की नस नाड़ियों में जब तक धार है तब ही तक वह रख सकता हैं, पकड़ सकता है, छू सकता है, मुट्ठी को बान्ध सकता है और खोल सकता है। यदि पहुंचे पर मजबूती के साथ रस्सी या सूत को जकड़ कर बान्ध दिया तो धार का आना जाना बन्द हो गया। अब हाथों से कहो कि मुट्ठी को तो बन्द करे लेकिन धार को रोक देने से वह न तो मुट्ठी को खोल सकेगा और न खुली मुट्ठी को बन्द कर सकेगा। यह अनुभव प्रत्येक व्यक्ति का है, होता है और हो सकता है। इस तरह पांव के दब जाने से धार के आने-जाने का सिलसिला बन्द हो जाता और वह उठने चलने और हिलने से मना कर देता है, क्योंकि धार ही उसकी गति और चाल का कारण थी। वह नहीं रही। इसलिये वह निकम्मा हो गया।

यही हाल और अंगों का है। जिह्वा से धार खिसकी नहीं कि वह न तो चख सकती है न बोल सकती है। कान से उस धार को जरा चले जाने दो। वह बहरा हो जायगा। नाक से धार को पृथक हो जाने दो और सूंघने की शक्ति उससे बिलग हो जायगी। यह प्रत्येक मनुष्य जान सकता है।

धार का आना कई तरह पर बन्द हो जाता है। नींद में, बेहोशी में, बीमारी में, तवज्जह के हट जाने से और बन्द लगा देने से वह रुक जाती है और मृत्यु के समय तो वह इतनी खिंच जाती हैं कि शरीर में वह रहती ही नहीं। उसके न रहने ही का नाम मृत्यु है।

इन शब्दों से तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि इन्द्रियां केवल इस स्थूल शरीर में किसी और ही शक्ति के भोग-विलास के यन्त्र और साधन थीं। वह शक्ति नहीं रही और यह निकम्मी हो गईं। वह शक्ति तुम ही तो थे और तो कोई भी नहीं था। जाग्रति की दशा को तुमने समझ लिया। अब अन्य मण्डलों की ओर चलो।

बत्तीसवां वचन

अपनी समझ सूक्ष्म मंडल या स्वप्नावस्था में

तुम सो गए। शरीर मुर्दा बन गया। तुम न बोलते हो, न हिलते-डोलते हो। अभी तक तुम शरीर में हो मगर

खिच गए हों। इन्द्रियों के स्थान को छोड़ बैठे हो और तुम्हारे सिमट जाने से यह बेकाम हैं। अब तुम चले कहां गये ? इस पर विचार करो।

सोते समय तुम अपने अन्दर खिच रहे। मन के स्थान पर पहुंचे। इन्द्रियां तो अचेतन्य और गतिहीन पड़ी है, मगर अन्दर-ही-अन्दर मन काम कर रहा है। इससे तुमको इन्कार हो ही नहीं सकता, क्योंकि तुम ही स्वप्नावस्था में तरह-तरह के सपने देखा करते हो। एक बिल्कुल नई दुनिया आ गई। जिसके दृश्य आंखों के सामने हैं। तुम वहां भी सूंघते-चखते, बोलते, छूते, देखते और तरह-तरह के व्यवहार करते हो। वहां लड़ाई भी है। चलना-फिरना भी है। मित्र, सुहृद, सम्बन्धी व अन्य पुरुष सब ही तो हैं। मन में थोड़ा-सा ख्याल आया नहीं कि इच्छानुसार सूरतें उत्पन्न होने लगीं। जाग्रति में तो तुम दुनियां के सामान को इकट्ठा करने का काम इन्द्रियों से लेते थे। यहां शक्ति बढ़ी-चढ़ी हैं। हाथी का ख्याल आया हाथी मौजूद है। आकाश में उड़ने की इच्छा हुई और तुमको पर लग गये। कोई तुम्हें पकड़ना चाहता और तुम सरलता से ऊपर उड़ जाते हो। शेर आया और तुम अपनी शक्ति से उसका जबड़ा पकड़ कर चीर देते हो। यहां तुम यदि विजयी हो जाते हो तो कभी-कभी पराजित भी हो जाते हो। यदि सुख होता है तो दुःख भी होता है और यह घटनायें

केवल विचारों के आने ही से क्षणमात्र में प्रगट हो जाती हैं।

नाम के लिये भी देर नहीं होती। पन्द्रह मिनट तक या एक हो दो मिनट के स्वप्न में तुम इतने काम कर लेते हो कि जागत अवस्था में शायद हजारों वर्ष में भी न कर सकते। उसका कारण यह है कि जाग्रत अवस्था स्थुल थी। यहां शक्ति में स्थूलता थी। यह कारण है कि काम में देर हुआ करती थी। यह सूक्ष्मता का स्थल है और शक्ति भी सूक्ष्म है अत: जो चाहते हो क्षणमात्र में हो जाता है।

यह कैसे आश्चर्य की बात है कि एक ही क्षण में माँ-बाप, राजा-प्रजा, सैर व शिकार सब ही कुछ उत्पन्न हो-होकर मिटते जाते हैं और तुम ही इन सबके पैदा करने वाले हो। ईश्वर की महिमा है। इससे अधिक क्या कहा जाय ?

इस मण्डल में उसी धार के खिंच आने से मन शक्ति-शाली हो जाता है। और शक्तिशाली होकर वह तरह-तरह को अठखेलियां खेलने लगता है। तुम चूंकि परतन्त्रता के साथ उस दशा में जाते हो तुम्हें उसका पता नहीं लगता। हम स्वतन्त्रता से स्वयं जाते हैं, इस कारण हमको उसका ज्ञान रहता है। काम तो जो हम करते हैं वही तुम भी करते हो, लेकिन अन्तर यह है कि तुमको मन की अवस्था की खबर नहीं है, हमको

खबर है। हम स्वयं ही अपनी शक्ति से जिस तरह का स्वप्न देखना चाहते हैं वैसा ही पैदा कर लेते हैं और उससे सुखी और आनन्दित होते हैं, तुम भी चाहो तो ऐसा कर सकते हो। बात कठिन नहीं है। केवल थोड़ा सावधान रहने की आवश्यकता है।

इसी मन के मण्डल में भी सुख का सामान है और तुम थोड़ा सा ध्यान देने से उनको पैदा कर लेते हो। यहां शरीर की तरह इन्द्रियां और अंग भी हैं। बाहर की इन्द्रियां काम नहीं देतीं। मन यहां नई और सूक्ष्म इन्द्रियां स्वयं ही बना लेता है और उनसे काम लेता है। जैसा शरीर वैसा मन चाहे यों कहो जैसा मन वैसा ही शरीर। यह मन भी एक तरह का शरीर है जिसमें कोई विशेष शक्ति धारों की सूरतों में रहती है। जब तक वह धार है तब तक मन काम करता है और जब मन के अन्दर से वह धार खिच गई, शरीर की तरह उसकी भी मृत्यु आ जाती है और भी निकम्मा बन जाता है।

शरीर के अंगों से धार के खिच जाने का भेद तो तुमको मालूम हो गया और तुम समझ भी गये, मगर मन से असली शक्ति की धार किस तरह खिच जाती है, यह तुम थोड़ी कठिनता से समझोगे। अभी तक तो तुम इस मन ही की समझ नहीं रखते। परन्तु हम तुमको

अपने शब्दों से और दृष्टान्त से कुछ-न-कुछ समझा कर छोड़ेंगे ।

यहां केवल इतना और समझ लो कि जिस तरह जगत में शरीर और शरीर के अंग किसी और ही शक्ति के यन्त्र थे और सुख-दुःख के साधन बने हुए थे, उसी तरह स्वप्न में यह मन भी उसी शक्ति का यन्त्र था और वहां सुख-दुःख का साधन बना हुआ था ।

मगर वह खिच गई । अब मन गतिहीन और अचेतन्य है । क्यों ? क्योंकि धार के खिच जाने के कारण अब वह स्वप्न नहीं देखता ओर न स्वप्न के खेल तमाशे से उसे काम हैं । उसका प्रमाण यह है कि वह स्वप्न नहीं देखता । मर गया । जिस तरह धार के खिच जाने से शरीर नकारा हो गया वैसे ही इस मन की भी दशा हो गई । इससे अधिक और प्रमाण तुम क्या चाहते हो ? क्या तुमको उसका भी ज्ञान नहीं है ? सुनो ! गहरी नींद या सुषुप्ति में यह दशा रोजाना तुममें आया करती है । इससे तुम इन्कार तो नहीं कर सकते । इन्कार करो और हम देखेंगे कि तुम किस तरह इन्कार करते हो ।

दो अवस्थाओं को तुम जान गये और यह भी प्रमाणित हो गया कि शरीर और मन दोनों तुम नहीं हो किन्तु यह विशेष अवस्थाओं में तुम्हारे आधीन हैं ।

सत्संग

परमसन्त परमदयाल
पण्डित फकीर चन्द जी महाराज
मानवता मन्दिर, होशियारपुर

दिनांक 25-5-1979

मंगल मय गुरु चरन, ताप त्रय हर लेवे वाले।
भव दुःख सकल मिटाय, शान्त पद देने वाले॥
भव सागर अति अगम पन्थ, नहीं सूझे कोई।
शब्द जहाज़ चढ़ाय, पार गुरु कीन्हा सोई॥
बूढ़त रहे मंझधार मिला नहीं कोई सहाई।
आये गुरु दातार, बांह गह मेरी ठौर लगाई॥
नाम रूप का भेद दिया, भरम भेद मिटाया।
पद अभेद दरसाया, भेद का फन्द छुड़ाया॥
राधास्वामी पद कमल, मन मधुप लुभाना।
मन बानी के परे, मिला धुरपद निरबाना॥

वह कहते हैं कि गुरु के चरण सुख देने वाले और ती तापों के हरने वाले हैं, भेद बताते हैं, फिर अन्त में भेद को मिटाकर अभेद पद में ले जाने वाले हैं। गुरु की ऐसी स्तुति को गई है। इस स्तुति को सुनकर मेरे दिल में प्रश्न पैदा होता है, क्यों फकीरचन्द ! तुम्हें ये चीजें मिल गई ? तेरे तीन ताप कट गये ? तुझको भेद मिल गया ? अभेद पद में चला गया ? अगर ये चीजें नहीं मिली तो मुझे कोई अधिकार नहीं है कि मैं गुरुमत का प्रचार करू। अगर मैं प्रचार करता हूं तो मैं धोखेबाज, मक्कार और स्वार्थी हूं। अकालीमत, निरंकारीमत, गुरु देवामत, राधास्वामी-मत, भारतवर्ष में लाखों लोग गुरुमत में शामिल हैं। आप लोग भी सन्तमत या गुरुमत की महिमा समझकर सत्संगों में जाते हैं। कोई कहीं और कोई कहीं जाता है। क्या ये चीजें आप लोगों को प्राप्त हैं ? नहीं। किसी विशेष-को प्राप्त हों तो हों।

मैं 1905 में राम या मालिक के दर्शनों के विचार से एक दृश्य के द्वारा दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के चरणों में गया था। मैं उनको गुरु मानकर नहीं गया था मैं तो उन्हें राम या मालिक का अवतार मानकर गया था। उन्होंने यह सन्तमत दिया था। मैंने प्रण किया था कि इस मार्ग पर सच्चा होकर चलूंगा और जो कुछ मेरा अनुभव होगा वह बता जाऊंगा। मेरे ये त्रय ताप कब गये और किसके जा सकते हैं ? जिनको ज्ञान

हो चुका है कि इस संसार में सुख नही है और यह संसार सदा रहने वाला नहीं है, हम यहाँ मुसाफिर हैं, चन्द दिन के लिए आये हैं, कोई सौ साल के लिए आया है, कोई सत्तर साल के लिए आया है केवल वह आदमी सन्तमत का अधिकारी है और वह इस शान्ति को प्राप्त कर सकता है, दूसरा नहीं।

मंगल मय गुरु चरन, ताप त्रय हर लेने वाले।
भव दुःख सकल मिटाय, शान्त पद देने वाले।।

इस बाणी को पढ़कर हम लाख किसी गुरु के बाहर के चरणों को मत्था टेकते रहें और धो-धोकर पीते रहें तो क्या शान्ति मिल जायेगी ? मैंने चरणों को धो-धोकर बहुत पिया कि भेद-अभेद का भेद मिल जाएगा ? नहीं। कश्मीर से दो आदमी आये हुए हैं । वे मुझे वहां बुलाते हैं, चण्डीगढ़, इंगलैंड और अमरीका वाले बुलाते हैं। अब मैं अपनी आत्मा से पूछता हूं कि अगर तू वहां जायेगा तो किसी को कुछ दे सकता है ? मैं कहूंगा कि नहीं। हम जितने गुरु बने हुए हैं, हम सब ठग हैं। आप लोगों को मूर्ख बनाकर लूटा जा रहा है। गुरु के चरण प्रकाश हैं जो हमारे अन्तर पदा होता है। जब तक कोई आदमी अपने अन्तर में प्रकाश में नहीं लायेगा और प्रकाशमय नहीं होगा उसके तीन ताप नहीं जा सकते । क्यो ? तीन ताप— शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दुःख हैं ।

शारीरिक दु:ख तो आप सब जानते हैं। मानसिक दु:ख भी सब जानते हैं। आत्मिक दु:ख अज्ञान होता है। जब तुम्हारी आत्मा या सुरत मन को छोड़कर प्रकाश में जायेंगी उस समय आपके त्रय ताप जायेंगे क्योंकि तीन तापों को महसूस करने वाला तुम्हारा मन है। इन्सान दु:ख भी और सुख भी अपने मन से मान लेता है। मैं आज इन कशमीरी सज्जनों को कह रहा हूं जो मुझे ले जाना चाहते हैं। ले जाने को तो ले जाओ। अगर मैं जाऊ तो मेरा कोई हर्ज नहीं लेकिन मैंने सच्चाई बता दी। क्यों कहता हूं ? क्योंकि मैंने दाता दयाल के चरण बहुत धो-धोकर पीये, आरतियें की, सोने के ताज बनाये, चान्दी के हुक्के बनाये और सिंहासन बनाये। उस समय की वह फोटो लटकी हुई है मगर मेरी समझ में बात नहीं आई, शान्ति नहीं मिली और मेरे त्रय ताप नहीं गए। कब गये ? जब से मुझे मन के रूप का पता लगा और मुझे विश्वास हो गया कि मन जो कुछ सोचता है, यह माया है, है नहीं, तब से मैं अपने मन के चक्कर को छोड़ जाता हूं। मुझे शान्ति कहां मिली ? कहां से समझ आ ? ऐ इन्सान ! जो कुछ तुझे मिलता है वह तेरे अपने पिछले या इस जन्म के किए हुए कर्मों का फल है। कोई गुरु महात्मा ईश्वर या परमेश्वर तुम्हें कर्म के फल जो कर्म तुमने या मैंने किए हैं, उसके फल भोगने से नहीं बचा सकता। हां ज्ञान की शक्ल में, जब अनुभव हो जायेगा अगर फिर दु:ख आयेगा भी तो आप महसूस नहीं

करेंगे क्योंकि आपको समझ आ जायेगी कि आप कौन हैं और ससार क्या है ? सन्तमत का सारा उद्देश्य यह है।

आप लोग मुझे कशमीर ले जाना चाहते हैं। अगर मेरा स्वास्थ्य ठीक रहा तो मैं चला जाऊंगा। मगर मैं आपको धोखे में नहीं रखना चाहता। मेरे पास सच्चा ज्ञान या शुभ भावना है मैं जादूगर नहीं, न पाखण्डी हूं और न चालाकी करता हूं। मैं तुम्हारी तरह गृहस्थी हूं। तुम गुरुओं या धर्मों के जाल में मत फंसो। अपनी करनी को ठीक करो। किसी गुरु या महात्मा ने तुम्हारे कर्म को नहीं बदलना। कोई आदमी किसी के कर्म को नहीं बदल सकता। अगर बदलना है तो तुमने बदलना है। कर्म का फल तो भुगतना पड़ेगा। मगर ज्ञान होने से उसका दुःख सुख नहीं मनाओगे। मैंने यह समझा है। मेरे जैसे आदमी के चार-पांच सत्संग सुने हुए काफी हैं जिन्हें सच्चाई की आवश्यकता है।

भव सागर अति अगम पन्थ, नहीं सूझे कोई।
शब्द जहाज चढ़ाय, पार गुरु कीन्हा सोई॥

यह गुरु की स्तुति है। इस संसार में इस मन के चक्कर में कोई सुखी नहीं। तुम अपने मन की दशा तो देखो, कभी दुःखी और कभी सुखी हो। वह कहते हैं इसका पन्थ अगम है कि इसका कोई भेद नहीं। अगर तुम बाहर के गुरु से हो प्रेम करते रहोगे तो तुम्हारा

बेड़ा पार नहीं होगा । कश्मीरियो ! मेरी बात कान खोलकर सुन लो। बाहर के गुरु ने हमारे साथ क्या किया ? अगर आपका बेड़ा पार हुआ होता तो आपके गुरु के स्वर्गवास होने पर, जो मेरे गुरु भाई थे, आप दूसरी जगह न जाते। मैं बात बिल्कुल साफ कहता हूं कोई लगाव लपेट नहीं। वे सब मूर्ख हैं जो गुरु की सेवा नहीं करते। तुम लोगों ने गुरु सेवा केवल यह समझी हुई है कि गुरु महाराज आये उन्हें कपड़े दे दिये, रुपए दे दिये, तुम तर जाओगे। यह बिल्कुल धोखा और फरेब है। किसी सच्चे पूर्ण पुरुष के सत्संग में जाकर उसकी बात को सुनना, समझना, गुनना और उसके अनुसार अमल करना ही सच्ची गुरु सेवा है। जो संसार की सेवा है यह पिछले जन्म का लेना-देना है। मैं दूसरी जगह नहीं गया क्योंकि मुझे उनके जीवन में ही भेद का पता लग गया था और भेद वह था कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता। मैंने यहाँ और बसरे-बगदाद में ऐसे-ऐसे **Case** देखे तो मुझे विश्वास हो गया कि इस मन के चक्कर से कैसे निकलें ? गुरु की दया, गुरु ने फूंक मारकर दया नहीं करनी। तुम भूले हुए हो। गुरु ने वचन कहने हैं, बात कहनी है। इस बात को समझ जाओगे तो तुम्हारा बेड़ा पार है। मैंने क्या बात समझी ? मैंने दाता के दरबार में बड़ी सेवा की है, बड़ा प्रेम किया है। तुम लोग तो भिखारी बनकर मांगने के लिए जाते हो और हम सब कुछ देने के लिए जाया करते थे। भिखारी का कभी

कोई मान करता है ? भिखारी का मान नहीं है। तुम लोग गुरु, ईश्वर से धन, पुत्र या कोई और चीज़ मांगते हो, तुम भिखारी हो । तुम्हारा परमार्थ के दृष्टिकोण से कोई मान नहीं है । सच्ची बात कहता हू। जिस प्रकार भिखारी हमारे दरवाजे पर आता है, इच्छा करे तो हम उसे कुछ दे दें, फिर उसका मान नहीं है । ऐसे ही जो आदमी उस परमात्मा या गुरु से दुनियां और धन मांगता है, वह भिखारी है। प्रकृति के दरबार में उसका मान नहीं है। मालिक से मालिक को मांगा करो। तुम उसके हो जाओगे वह तुम्हारा हो जायेगा। जहां तुम्हारा दिल सच्चा हुआ तुम्हारे सब काम अपने आप हो जायेंगे। मैंने कितनी सच्चाई से बात की है। तुम लोग आते हो, बाबा जी! हमारे पुत्र हो जाये, हमारी लड़की का विवाह हो जाये । अरे! जिनका विवाह जहां-जहां होना है वह हो जाना है मगर हम लोग भिखारी हैं। भिखारी का कोई मान नहीं । प्रकटतय: देख लो। इस वास्ते मालिक से सिवाय प्रेम और अपने घर जाने के अच्छे महापुरुष दुनियां नहीं मांगते। इस संसार में हमने जो कर्म किए हैं उनका फल मिलता है। आजकल हम गुरुओं ने ढोंग बनाया हुआ है। नाम ले लो, गुरु तुम्हारे सारे पाप पिछले कर्म ले लेता है। संसार इन बातों में फंसकर लुट गया।

भव सागर अति अगम पन्थ, नहीं सूझे कोई।
शब्द जहाज़ चढ़ाये, पार गुरु कीन्हा सोई॥

शब्द जहाज़ दो हैं। एक मैं मुंह से बोल रहा हूं यह शब्द है। जो मेरे या किसी महापुरुष के शब्द को पकड़कर मान लेगा और गुनेगा, एक तो वह पार हो सकता है। मन महाचञ्चल है उसको वश करना कोई आसान बात नहीं है। कहना और चीज़ है किताबों में लिखना और बात है। क्रियात्मिक जीवन (**Practical Life**) में, मैं इतना ऊञ्चा होता हुआ किसी समय यह मन मुझे भी मार लेता है। किसी समय इस मन के अन्तर ऐसा विचार पैदा होता है जिसको मैं नहीं चाहता, मगर आता है फिर इस विश्वास और ज्ञान से कि जो कुछ फुरा है, यह असलियत नहीं, माया है। कर्म काटता हूं। कान को हाथ लगाता हूं। मर जाना है। मैंने झूठ बोल कर क्या लेना है? ये जितने सहस्र-दल-कंवल, त्रिकुटि, सुन्न भंवर गुफा में मन का साधन करने वाले हैं इनको मन नहीं छोड़ेगा। इनके मन में अच्छाई या बुराई होती रहेगी। जब तक यह ज्ञान नहीं होता और वे मन से निकल कर आगे नहीं जाते। जिस प्रकार बाबा सावनसिंह जी महाराज कहा करते थे— "दस दरवाजे लंघों ते आगे सत्गुरु खोलता है"। वह दस दरवाजे हमारा मन है। मन के परे जाओ। मन के विचारों में मत वहो। इस वास्ते तरने के लिए शब्द योग बनाया है ताकि फिर हम संसार में न आयें। सत्संगियों के अनुभवों को सुनने से मेरी आंख खुल गई और मेरी समझ में बात आ गई।

आप मुझे कहते हो, अनन्त नाग चलो। मेरा क्या जाता है मैं चला जाऊंगा। मगर मैं अपनी जान को बचाना चाहता हूं सच्चाई वर्णन कर जाता हूं कि मेरे किसी जगह जाने से अगर तुम्हारा विश्वास है तो तुम्हारा काम बन जायेगा। मैं कुछ नहीं करता। हां केवल शुभ भावना देता हूं, यह ठीक हैं। अगर तुम्हारे मन के विचार में शक्ति है कि तुम अपने कर्म को ठीक कर लो तो मेरे मन में भी शक्ति होनी चाहिए। अगर मैं किसी को शुभ भावना दूं तो उसे लाभ पहुंचना चाहिए शर्त यह है कि वह मेरी बात पर विश्वास करे। जो विश्वास नहीं करता उसे कुछ नहीं मिलता चाहे खुदा मियां भी उसे मिल जाये। मैं बचन कहता हूं जो मान जाता है उसे लाभ पहुंचना है।

बूढ़त रहे मंझधार, मिला नहीं कोई सहाई।
आये गुरु दातार, बांह गह मेरी ठौर लगाई।।

यह हजूर महाराज की प्रेम वाणी का शब्द है। वह कहते हैं कि मैं इस मन के चक्कर में डोलता रहा और चक्कर खाता रहा। गुरु महाराज मिल गये उन्होंने मुझे एक ठिकाने लगा दिया। क्या उन्होंने फूंक मार कर ठिकाने लगाया ? नहीं। बचन कहकर और अनुभव कहकर ठिकाने लगाया। इस वास्ते सबसे बड़ी चीज़ सत्संग है सत्संग के बिना जो नाम जपते हैं उनको कोई लाभ नहीं और जो केवल सत्संग ही करते रहते हैं और

साधन नहीं करते उनको भी कोई लाभ नहीं। इस वास्ते सत्संग और नाम दोनों इकट्ठे देते हैं। मगर सत्संग किसी पूर्ण पुरुष का हो। यह सच्ची बात है। मगर पूर्ण पुरुष की बात सारे आदमी नहीं समझ सकते यह तो जिसके भाग्य में है वह आता है। मैं तो यह समझता हूं कि अपनी कोशिश से कुछ नहीं बनता। मैं अब यह कहता हूं—

नाम रूप का भेद दिया, भरम भेद मिटाया।
पद अभेद दरसाय, भेद का फन्द छुड़ाया।।

वह कहते हैं कि नाम रूप का भेद दिया और फिर उस भ्रम को मिटा दिया अर्थात् नाम रूप को भी छुड़ा दिया। हम गुरु के पास गये थे। उन्होंने कहा सुमिरन ध्यान करो। जब गुरु का समय आया तो वह सुमिरन ध्यान और भेद का विचार ही उड़ गया। क्योंकि मैं जो असल में "मैं" हूं वह न सुमिरन न ध्यान में हूं। वह तो मेरा मन सुमिरन और ध्यान करता है। जब तक इन्सान सुमिरन ध्यान में लगा हुआ है वह मन से परे कैसे गया ?

आप मेरे भाई और बहनें हैं। मैं आपसे बिल्कुल झूठ नहीं बोलता। मैंने इस रास्ते सफर किया है। मेरी आंख खुल गई। दाता लिखा करते थे।

फकीरा गुरु तो तेरे पास।

उन्होंने बहुत कुछ लिखा मगर मेरी समझ में नहीं आया। मुझे यह काम दिया था। मैंने भी यह काम कई आदमियों को दिया हुआ हैं मगर वे स्वार्थी हो गये। अपने मान में आ गये। थोड़ी सी सिद्धि शक्ति आ गई तो अलग हो गए। काम तो इसलिए दिया था कि इनको अकल आ जायें मगर अकल आने की बजाय ये दूसरों को भी भेसमझ बनाते हैं। यह सच्ची बात है।

नाम रूप का भेद दिया, भरम भेद मिटाया।

क्या भेद दिया ? जो मैं दे रहा हूं कि ऐ इन्सान ! असली मालिक और गुरु के चरण प्रकाश हैं और शब्द हैं। बाकी जितना खेल है यह सारा मन का चक्कर है। यह भेद दिया और फिर ज्ञान हो गया। अब कभी मन चञ्चल होता है तो सुमिरन ध्यान करता हूं नहीं तो सिवाय शब्द के मैं कुछ नहीं करता और अब तो मुझे शब्द की भी आवश्यकता महसूस नहीं होती। मैंने जो कुछ समझा वह मेरे साथ है जिसको कि कबीर साहिब ने भी सबको नहीं बताया। केवल धर्मदास को बताकर कह दिया—

धर्मदास तोहे लाख दोहाई।
सार भेद नहीं बाहर जाई॥

स्वामी जी ने कह दिया—

सन्त बिना कोई भेद न जाने।
वह तोहे कहें अलग में॥

मैंने अलग का भेद काट दिया।

पद अभेद दरसाय, भेद का फन्द छुड़ाया।

इसको कौन समझेगा? अर्थात् भेद देकर फिर भेद का नामोनिशान मिटा दिया। यह तो हजूर महाराज को पता होगा कि उनका क्या भाव है? मेरा क्या मतलब है? जब मैं मन को छोड़कर आगे जाता हूं तो मैं अन्तर जाकर प्रकाश को देखता और शब्द को सुनता हूं। प्रकाश और शब्द और चीज़ हैं और इन्हें देखने और सुनने वाली और चीज़ है। वह जो और चीज़ है जब उसकी तलाश करता हूं तो क्या हो जाता है? मेरी "मैं" ही नहीं रहती, मैं ही नहीं रहता। इसका प्रमाण जेठ महीने की स्वामी जी की और कबीर की बाणी से मिलता है। स्वामी जी फरमाते हैं—

जेठ महीना जेठा भारी,
जीवन हृदय तपन करारी।
सन्त दयाल जीव हितकारी,
भेद कहैं वे निजकर भारी॥

क्या भेद? मैं राम को मिलने निकला था। वह कहते हैं कि जहां से हम आये हैं वहाँ न खालक न मखलूक और न खलकत, न गुरु, न चेला, न स्वामी और न सेवक है। मैंने इसका क्या भाव समझा? कि अगर कोई सन्त इस मन के चक्कर, प्रकाश और शब्द से ऊपर

चला जाये तो वह अपने आपको महसूस ही नहीं करता। अंश कुल में मिल जाता है। मगर क्या ऐसे सन्त में कुछ शक्ति है कि वह कुछ कर सके? नहीं। वह नहीं कर सकता।

लोग कहते हैं परमात्मा अलख और अगम है। मैं नहीं मानता। किसी को पूरा भेद नहीं मिला। न कबीर साहिब, न स्वामी जी न दाता दयाल और न किसी ओर सन्त को। जितना-जितना किसी की बुद्धि ने काम किया उतना-उतना उसने वर्णन कर दिया। जब इन्सान तलाश करता-करता अपने आपको भूल जाता है तो जब होश आती है तो वह कह देता है कि मालिक अनामी, अरंग और अरूप है। "वह" क्या है क्या नहीं, कोई कुछ नहीं कह सकता सिवाय इसके कि "वह" है। उसकी जो लौ होने की दशा होती है उसको वह "वह" कह देता है। वही मालिक की दशा है क्योंकि अपने आप अरूप अनाम हो गया! उन्होंने समझा वह मालिक वही है। किसी में क्या शक्ति है कि वह उसे जान सके। हमारे शरीर का एक कीड़ा अगर यह चाहे कि वह हमारा सब कुछ जान ले तो क्या वह जान सकता है? नहीं। इसलिए मेरी समझ में आया कि मैं कौन हूं? मैं चेतन का एक बुलबुला हूं। जब ऊपर के मण्डल में शब्द पैदा होता है तो उससे गति, सनसनाहट पैदा होती है, वह सुरत है। वह यहाँ नीचे आई हुई है। ज्ञान हो गया और वह

सनसनाहट समाप्त हो गई। न मैं, न तुम और न कोई था। इस विचार ने मुझे शान्ति दी। मैंने अपने जीवन में यह समझा।

इस चैतन के बुलबुले में "मैं" आई हुई है। शरीर में आते हैं, मैं बाप, भाई और अमुक हूं। मन में आता है मैं मुख्यमन्त्री, इन्सपैक्टर हूं आत्मा में मैं अलख, अगम और अनामी हूं। ऐ इन्सान! तू असल में कौन है? तू चैतन का एक बुलबुला है। तेरे अन्तर "मैं" आई हुई है। इस "मैं" ने तुझे चक्कर में डाला है। यहां तक मेरी पहुंच है अब मैं समझता हूं कि मैं चैतन का एक बुलबुला हूं। मौज ने मुझे बनाया। जब चाहे उसे तोड़-कर ले जायेगी। मैं कहां जाऊंगा? न मैं पैदा हुआ और न मैं मरूंगा। वह माया है। मेरी एक "मैं" है, मैं मर जायेगी बाकी क्या रह जायेगा?

जो था रूप पहले वही रूप मेरा।

पहले क्या था? अलख, अगम और अनाम था। अब मैंने समझ लिया कि मैं चैतन का एक बुलबुला हूं। इस वास्ते इस समय मेरा मार्ग शरणागत है। वह मालिक एक है, अपने आपको उसके सुपुर्द करता रहता हूं। जिस तरह तेरी इच्छा है रख, मार चाहे छोड़, जो इच्छा है कर। मुझे यहां शान्ति मिली।

राधास्वामी पद कमल, मन मधुप लुभाना।
मन बानी के परे मिला, धुर पद निरवाना॥

राधास्वामी के पद क्या हैं? ये पांव हैं। दुनियां भूली हुई है। यह हमारा संसार का व्यवहार है। गुरु के चरण कमल प्रकाश हैं और यही सनातनधर्म कहता है। जब इससे परे जायेंगे तो मन के अन्तर जो कुछ भी सोच विचार है सब समाप्त हो जायेगा। यह पद निर्वाण है। निर्वाण फूंक मारकर बुझाने को कहते हैं। मैंने यह समझा है।

मैंने परमार्थ के बारे बता दिया। इस संसार में दो मार्ग हैं— परमार्थ और स्वार्थ। एक इस संसार में सुखी रहने के लिए वेद मार्ग है। वेद मार्ग की कुञ्जी क्या है? "शिव संकल्प अस्तु" सदा अच्छा विचार रखो। अपने मन वचन कर्म से शुद्ध रहने की कोशिश करो। मन को शुद्ध रखने के लिए क्या चाहिए?

पहले सत्संग चाहिए, उन आदमियों का जो मन के शुद्ध हों वरना कोई लाभ नहीं। नेक कमाओ खाओ। अपने घर वालों की निष्काम सेवा करो।

घरों में प्रेम से रहा करो। अपने मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य का पालन किया करो। जो नौजवान बच्चे गन्दे काम करते हैं जब उन्हें जवानी आती है तो वे सुखी नहीं रहते। इस वास्ते बच्चों को बच्चों के विचार से पैदा किया करो। खुदरौ सन्तान तुम्हारे काम नहीं आयेगी। खुदरौ का भाव यह है कि अपने

आप पैदा हुई सन्तान। स्त्री पुरुष कामातुर होकर केवल भोग के लिए भोग करते हैं बच्चा पेट में आ जाता है। अब आप यह आशा कि वह बच्चा आपके किसी काम आयेगा, मैं नहीं मानता। आजकल अधिकतर खुदरौ सन्तान है। मैंने सन्तान के विचार से एक लड़का पैदा किया मुझे बचपन से आज दिन तक अवसर नहीं मिला कि उसे बुरा भला कहूं मारना तो एक ओर रहा। अब बड़ा अफसर है। मेरा यह अनुभव है। मगर मेरी एक लड़की मां का कहा नहीं मानती थी। अगर कोई बात कह दी तो उसने झट उत्तर दे दिया। मेरी स्त्री मुझे कहती थी जब स्त्रियें आती हैं तो झट उनकी पीठ थपथपाता है मगर लड़की को नहीं समझाता। एक दिन मैंने लड़की को कहा बेटी ! तेरी मां शिकायत करती है। वह रो पड़ी और कहने लगी पिता जी ! मूझे पता नहीं क्या होता है ? जब मां कुछ कहती है तो मैं जवाब दे देती हूं। पीछे से मैं रोती और पछताती भी हूं।

मैं जानता था कि ऐसा क्यों होता था। मुझे और मेरी स्त्री को सन्तान की आवश्यकता नहीं था। मैं कामातुर हुआ और अपने मन के साथ आध घण्टा लड़ता रहा। आखिर लड़की पेट में आ गई। मुझे याद है कि मेरी स्त्री ने मुझ से पीपल की जड़ आदि मंगवाई जिससे बच्चा चला जाये मगर नहीं गया। जिस बच्चे का मां पहले ही स्वागत (Welcome) नहीं करती तो तुम कैसे आशा कर सकते हो कि तुम्हारी सन्तान तुम्हारे कहे में रहेगी। मैं गृहस्थियों को यह शिक्षा देना चाहता हूं।

घर में शान्ति रखा करो। जिस घर में कलह क्लेश है, पति-पत्नि, बाप-बेटे की नहो बनती, दिल में द्वेष है वहां आज भी सुख नहीं और कल भी सुख नहीं। क्यों? तुम्हारे विचार में बड़ी शक्ति है। जो कुछ तुम सोचते हो वह तुम्हारे शरीर के ऊपर अवश्य प्रभाव डालता है। कोई आदमी नहीं बच सकता। जितनी आमदन हो उसके अनुसार खर्च करो। गरीबों, दुःखियों की सहायता करते रहो। जो सहायता करता रहता है उसे आता रहता है।

आप काशमीर से आये हैं। मैंने आपको सच्चाई बता दी, कोई परदा नहीं रखा। बाकी जो कुछ है तुम्हारे हाथ में है अपने दिल को साफ करो। मैंने तो केवल सच्चाई वर्णन करनी है सच्चे बनो। गुरु को अपने पास समझो। गुरु तुम्हारे दिल में रहता है। प्रातः सायं प्रार्थना किया करो।

सब झगड़े इस मन के हैं और कुछ नहीं। हम लोग असलियत को भूलकर दुनियां में फंस गये। संसार को नाम की आवश्यकता नहीं है। गृहस्थ में अपनी नीयत को साफ रखो। **Your own self is your own Guru** बस, इतनी सी बात है। यह बात गुरु समझाता है। सत्संग करो जहां से तुम्हें सच्ची समझ मिले।

॥ सबको राधास्वामी ॥

सत्संग

परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस
हजूर मानव दयाल जी
डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज
उज्जैन 5-2-1991 (सायंकाल)

सत्संग की महिमा

चल गुरु के सत्संग री, मेरी सुरत सहेली।
सतसंगत अमृत जल बरसे, सत्संग निर्मल गंग री।
सतसंग प्रेम सिन्धु है सजनी, उमड़े प्रीत तरंग री।
बास सुबास मिले सतसंगत, पावे रंग सुरंग री।
सतसंगत का ध्यान रहे नित,
कीट सहज हो भृंग री।
राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत,
काल करम कर भंग री।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हो वक्रोऽपि, चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सद्गुरुरूप परम-प्रिय सत्संगी भाइयो और बहनो ! जब भी मैं यहां आता हूं और आप लोगों के बीच अपने कुछ अनुभव बांटने की कोशिश करता हूं तो मुझे यह पता नहीं चलता कि क्या कहा जा रहा है। सत्संग एक धारा है। यह धारा सत् से आती है और उस धारा में न ही केवल सुनने वाले सत्संगी बहते हैं बल्कि उस धारा की जो नहर है वह टूट जाती है और केवल लहर रह जाती है। नहर है धारा। जैसे मेरे प्यारे भट्ट जी ने आपको बताया कि कबीर साहिब ने राधास्वामी की गुप्त शब्दों में व्याख्या करते हुए कहा—

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई बहाय।
ताहि उलट सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

वह सद्गुरु जो इस जगत से परे है, जो हमारा लक्ष्य है, इष्ट है, वह ऊपर बैठा हुआ हमारे काम का नहीं है, हालांकि हमें जाना उसी के पास है। जब तक वह स्वयं लहर में आ करके नहर नहीं बनता, तब तक वह स्वयं खेतों को पानी नहीं दे सकता। इसलिए परम-तत्व आधार स्वयं नहर बन करके आता है। 'कबीर धारा अगम की'। अगम पर पहुंचा नहीं जा सकता। अगम की धारा इतनी विशाल है कि उसको समझा नहीं जा सकता।

'तेरी लीला कौन समझे, तू तो अपरम्पार है।
एक दृष्टि से तेरे, दुःखियों का बेडा पार है॥'

उस मालिक की लीला अथवा धारा इतनी अपार है कि व्यक्ति चकित रह जाता है, हैरान हो जाता है। आप इस पृथ्वी पर हैं। आपको अर्थात् इन्सान की हस्ती क्या है? सारे सौर-मण्डल में यह पृथ्वी एक छोटा सा टुकड़ा है। हां सौर-मण्डल के अन्दर तो इसकी हस्ती है। सौर-मण्डल क्या है? सौर-मण्डल में पृथ्वी, चन्द्रमा, बुध आदि सब सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं क्योंकि सूर्य से ही शक्ति मिलती है। सूर्य परमतत्व का अंश है। मगर सूर्य का मण्डल आकाश-गंगा में कोई हस्ती नही रखता। आकाश-गंगा में इस सूर्य से भी बड़े बडे सूर्य हैं और अरबों सूर्य-मण्डल परिक्रमा कर रहे हैं, आकाश-गंगा के केन्द्र की। हमारा सौर-मण्डल परिक्रमा करा रहा है— परमेष्ठी की। वेदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में परमेष्ठी कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थ जगत् की व्याख्या करते हैं। वेदों में दो विद्यायें हैं— (1) ब्रह्म-विद्या (2) ब्राह्मण-विद्या। एक है मन्त्र विद्या और दूसरी है यज्ञ विद्या। यह सारा जगत् यज्ञ है। इस यज्ञ का सम्बन्ध परम-तत्व के एक मन्त्र से होता है। मन्त्र हमें आत्मा के ज्ञान की तरफ ले जाता है। आत्मा के ज्ञान से अभिप्राय है— अपनी जात का ज्ञान, अपनी विशुद्ध आत्मा का ज्ञान, जिस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद कुछ जानने की जरूरत नहीं रहती। सन्तमत और सनातन धर्म की यदि कोई

पहिली और अन्तिम किताब है तो वह है भगवद्गीता। भगवद्गीता भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं गाई। स्वामी जो महाराज ने क्या कहा ?—

राधास्वामी गायकर जनम सुफल कर ले।
यही नाम निज नाम है, मन अपने घर ले ॥

गाने का मतलब है अपने जीवन में उतार लेना। राधास्वामी क्या है ? राधास्वामी एक अवस्था है। हम स्वयं पहिले मालिक से अलग होकर धारा बने। स्वामी से या मालिक से अलग होने के बाद हमें विरह हुआ, तड़प हुई। तब हम अपने स्वामी से मिलने के लिए धारा से राधा बने। तब राधास्वामी की अवस्था को प्राप्त करके अपने स्वामी से मिल गये। यह अवस्था हमें सद्गुरु की दया, मेहर और प्रेम के कारण मिली।

गुप्त रूप जहां धरिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहां कोई विश्राम ॥

आप राधास्वामी को किसी व्यक्ति से सम्बन्धित मत करो। राधास्वामी असली नाम है। यह नाम आदिकाल से चला आ रहा है। गोपाल-सहस्र-नाम में भी यह नाम आता है। तो राधास्वामी क्या है ?

'गुप्त रूप जहां धारिय'।

जब कोई सृष्टि नहीं थी, न सत् था न असत् था, उस समय कोई रचना नहीं थी। कोई देवी-देवता या ब्रह्म

की शक्तियां नहीं थीं। केवल एक तत्व था। उपनिषदों के अनुसार उस परात्पर ब्रह्म में एक हिलोर आई या मौज आई। उसने अपने आप से कहा—

'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् मैं एक हूं, अनेक हो जाऊं। इसी सत्य को स्वामी जी महाराज ने गुप्त शब्द एवं सृष्टि से पहिले परात्पर ब्रह्म की तरफ इशारा किया है और कहा है कि वह गुप्त शब्द प्रकट हुआ, जिसमें से राधा और स्वामी अर्थात् सुरत और शब्द दो धारायें बह निकलीं। इसलिये उस प्रकट शब्द को जो गुप्त अवस्था में अनाथ था, राधास्वामी नाम में प्रकट कर दिया गया। जब प्रेम से प्रेरित होकर राधा बन जाती है और मालिक को दया से शब्द में विलीन होकर परम तत्व में विलीन हो जाती है तो वह अपनी निज अवस्था में पहुंच जाती है। स्वामी जी महाराज ने कहा— "जब मैं वहाँ जाता हूं, जहां से मैं आया हूं तो क्या हालत होती है ?

नहिं ख़ालिक मख़लूक न ख़िलकत।
कर्ता कारण काज न दिक्कत॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं था सो॥

कुछ नहीं का मतलब है कि हम अपनी बुद्धि के मुताबिक अपने संस्कारों के मुताबिक, जो हम समझते हैं, मालिक वह नहीं है। मीरा ने भगवान कृष्ण को अपना इष्ट माना। 'मन्ने की गति कही न जाये'। सद्गुरु

से चाहे किसी भी रूप का प्रेम करो, लेकिन प्रेम करो। उसे पिता मानो, भाई मानो, दोस्त मानो, पुत्र मानो। सद्गुरु से आप कोई भी रिश्ता जोड़ लो। मीरा ने इष्ट को आध्यात्मिक पति मान लिया था और उससे इतना अगाध प्रेम किया कि जब मीरा बच्ची थी तो भगवान् कृष्ण बच्चा बनकर उसके साथ खेला करते थे। जब मीरा बड़ी हुई तो उसका विवाह, मेवाड़ के महाराणा से कर दिया गया। मगर उसका संकल्प दृढ़ था। उसने महाराणा को बता दिया कि उसका विवाह भगवान कृष्ण के साथ हो चुका है। मीरा कृष्ण से कमरे के अन्दर बात करती रहती थी, जिसे महाराणा सुनता रहता था। जब अन्दर जाता तो मीरा के अतिरिक्त वहां और कोई नहीं होता था। कुछ समय के बाद महाराणा की मृत्यु हो गई। बाद में मीरा को गुरु रैदास से ज्ञान प्राप्त हुआ। तब मीरा को पता चला कि भगवान कृष्ण अविनाशी दूल्हा है। एक पद्य में मीरा ने लिखा है—

पग घुंघरू बान्ध मीरा नाची रे।
जहर का प्याला राणा ने भेजा,
पीवत मीरा हांसी रे ॥

अन्त में मीरा कहां पहुंची ?

मीरा कहे प्रभु कबहू मिलोगे।
अजर अमर अविनाशी रे ॥

गुरु रैदास जी के कहने पर मीरा ने भगवान कृष्ण को अविनाशी दूल्हा माना। मेवाड़ में जब मीरा को अधिक दुःख दिया गया, तो उसने सन्त तुलसीदास जी को एक पत्र में अपना सारा हाल लिखकर भेजा। तुलसीदास जी ने पत्र के जवाब में लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥

इस पद को पढ़कर मीरा ने मेवाड़ त्याग दिया और वृन्दावन चली गई। मीरा सद्गुरु के असली स्वरूप को समझ गई थी।

आज के शब्द में 'सुरत सहेली' क्यों कहा है? इसकी व्याख्या आगे करूंगा। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि परम-तत्वाधार को चाहे आप राम समझो या कृष्ण समझो, किन्तु उस रूप को उसी अविनाशी, अनन्त, हर प्रकार के रंग-रूप से परे उसी धुरधाम निवासी का रूप मानों, क्योंकि उस रूप से प्रेम करते-करते तुम अन्त में उसी निज अवस्था, परात्पर ब्रह्म में विलीन हो जाओगे जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अमुक वस्तु है और अमुक नहीं है।

स्वामी जी महाराज ने कहा—

'राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहीं कुछ नहीं कुछ नहीं था सो॥'

तुम समझते हो कि वह कुछ नहीं है, लेकिन वह है जरूर। वह सब कुछ है।

कोई अगुण कहे, कोई सगुण कहे।
कोई निराकार, साकार कहे॥

कुछ लोग उस मालिक को निर्गुण कहते हैं और कुछ लोग उसे सगुण कहते हैं। निर्गुण कहने वाले भी ठीक हैं। क्योंकि गुणों की एक सीमा होती है। जैसे— लम्बा, चौड़ा, गोरा, काला, मुकुटधारी, धनुषधारो आ द। अपना-अपना विश्वास है। यही कारण है कि तुलसीदास जी द्वारिकाधीश के मन्दिर में गये और कहने लगे—

'तुलसी मस्तक तब निवे, जब धनुषवाण लो हाथ।'

इतना कहते हो मुरली के स्थान पर धनुष आ गया था। असलियत में न वह मुरली वाला है, न धनुष वाला है। यदि आपका प्रेम सच्चा व अगाध है तो मालिक को उसी रूप में प्रकट होना पड़ता है जिस रूप को तुम चाहते हो। इसलिए मीरा ने तुलसो के राम को अपना कृष्ण माना।

वह सर्वशक्तिमान् है। मैं आपको इस्लाम धर्म के बारे में बताता हूं। मुसलमान दिन में पांच बार नमाज पढ़ता है। नमाज़ पढ़ने में कहता है—

लाइलाहाइलिहुलाह मोहम्मद-उल-रसूल इल्लाह।
रहमान उल् रहीम रब्बुल आलमीन।

यह हमारे ही वेद-मन्त्र का अनुवाद है। वह देवताओं को मानते हैं। 'लाइलाहा' देवताओं में एक की पूजा करो। मैंने आपको बताया कि गुरु प्रकाश में रहता है, इसलिए सारे देवता उसके अन्दर रहते हैं। 'लाइलाहा इलिल्लाह मोहम्मद उल रसूल इल्लाह' मोहम्मद गुरु हैं, तुम गुरु के द्वारा ही खुदा के पास प ंच सकते हो। 'रहमान उल् रहीम'। वह दयाल है, परम दयाल, 'रब्बुल आलमीन' वह ब्रह्माण्डों का खुदा है।

मोहम्मद साहिब ने यह तो नहीं कहा— "रब्बुल मुसलमीन" जब वह रब्बुल आलमीन अर्थात् सारे आलम का खुदा है, तो क्या वह एक मस्जिद के अन्दर बैठा है? मोहम्मद साहिब ने कहा— "वह सच्चा मुसलमान नहीं जो दूसरे मज़हब की ताज़ीम नहीं करता"। मैं आपको सच्चाई बयान कर रहा हूं। मस्जिद कहां है? अरे! जहां पर जा नमाज़ (मुसल्ला) बिछाया, वहां पर मस्जिद है। मैं आपको एक बात सुनाना चाहता हूं।

1982 में महाराल जी की आज्ञा के मुताबिक मैं त्याग-पत्र देकर भारत आ गया। देहली में विश्वविद्यालय ग्राण्ट कमीशन ने एक सम्मेलन किया, जिसमें फ्रान्स, इंग्लैण्ड से दार्शनिकों को बुलाया था और भारत के भी हिन्दु-मुसलमान दार्शनिकों को बुलाया। सम्मेलन का विषय था— "हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म में साहश्य"। मैं सलबान स्कूल में दशहरे का सत्संग दे रहा था। तभी

टेलीफोन पर मुझे कहा गया— "डा. शर्मा ! आप 2, 3 घण्टे के लिए सम्मेलन में आ जायें"। जब मैं सम्मेलन में गया, तो उस वक्त गौहाटी के डा. शर्मा अपना लेख पढ़ रहे थे। वह अपने लेख के माध्यम से इस्लाम धर्म और हिन्दु धर्म की समानता पर प्रकाश डाल रहे थे। अब वहां पर एक फ्रान्स के प्रोफैसर थे। पश्चिम के लोग समानता नहीं देखते, बल्कि अलगाव देखते हैं। वह खुदा को नहीं जानते। समानता का नाम ईश्वर है। फ्रान्स का प्रोफैसर ईसाई था। उसने कहा— "हिन्दु धर्म और इस्लाम धर्म में समानता नहीं है, बल्कि असमानता है"। सम्मेलन का संयोजक डा. दुरानी उदयपुर में मेरा असिस्टेण्ट रह चुका था। उसने कहा— "गौहाटी के प्रोफैसर डा. शर्मा ने गलत कहा है। हम मोहम्मद को खातमुलनबीन मानते हैं"। अब मैंने उठकर कहा— "मित्र ! अब मेरा यह चोला प्रोफैसर का नहीं है। मेरा चोला अब सन्त का चोला है। लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूं कि इस चोले के अन्दर दर्शन का भेद क्या है ? आप सब समानता के ऊपर व असमानता के ऊपर बोल रहे हैं। मगर क्या किसी ने कबीर साहिब को पढ़ा। कबीर साहिब का किसी ने नाम ही नहीं लिया।

तब मैंने उनको कबीर साहिब के इस शब्द के बारे में बताया— 'सखिया वा घर सबसे न्यारा'। मैंने कहा कि भारतीय दृष्टि एकत्व की है और पश्चिमी दृष्टि

अनेकत्व की है। एकत्व का मतलब है कि हर एक के अन्दर उसी मालिक को देखना। पश्चिम के दृष्टिकोण के अनुसार— "मैं और तू दोनों नहीं रह सकते। मैं रहूंगा या दूसरा रहेगा"। अब मैंने डा. दुरानी को कहा— "आपने एक बात तो सही कही है कि मोहम्मद साहिब को खात-मुलनबीन अर्थात् आखिरी गुरु कहा है। क्या आपने कभी यह सोचा कि क्या वह गुरु है?" गुरु का रूप क्या होता है? गुरु को जब तुम परम-तत्व नहीं मानते, बल्कि शरीरधारी मनुष्य मानते हो, तो तुम गुरु के असली स्वरूप को नहीं समझ सकते। मोहम्मद का मतलब है गुरु, और गुरु हमेशा रहने वाला होता है। मैंने यह सब बात उनको बताई।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि राम, रहीम, करीम न केशो कि उस मालिक को हम जो कुछ मान लेते हैं, वह वैसा नहीं है। लेकिन वह है ज़रूर। उसके अतिरिक्त और कोई हस्ती है ही नहीं। स्वामी जी महाराज ने जो भी बात कही वह अनुभव के आधार पर कही। लोग सोचते हैं कि स्वामी जी महाराज ने जो कहा है, वह वेदों में नहीं है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में नासदीय सूक्त है, जिसके अन्दर लिखा है कि शुरू में न देवा थी, न देवता थे न ब्रह्मा, विष्णु, शिव थे, न सत् था न असत् था। 'तदेकं तथा' वह था, जिसको हम परम-तत्व कह रहे हैं। अब सोचो कि स्वामी जी महाराज

की बात में और ऋग्वेद की इस बात में क्या भेद है ? वास्तविकता यही है कि चाहे आप उसे राम मानो या कृष्ण मानो—लेकिन उन्हें शरीरधारी न मानकर परमतत्व सर्वाधार मानो।

'कोई अगुण कहे कोई सगुण कहे'।

सगुण का मतलब है कि उसको गुणों की सीमा में बान्धना कि वह काला है, गोरा है, लम्बा है, चोड़ा है, राम है कृष्ण है। लेकिन अगुण का मतलब है कि हम उस मालिक को किसी सीमा में नहीं बान्ध सकते। अगर हमने उसे सीमा में ला दिया तो वह सर्वाधार नहीं है। अगुण का मतलब यह नहीं कि वह खाली है। यह जगत् सुन्दर है अर्थात् राधा सुन्दर है। सन्तमत यह नहीं कहता कि जगत् से नफ़रत करो। जैसे वल्लभाचार्य जी ने कहा— "अद्वैत वेदान्ती मूर्ख हैं, जो कहते हैं कि यह जगत भ्रम है। जगत् को भ्रम कहने का मतलब है अपने आपको भ्रम में डालना। अरे राधा या धारा उसी स्वामी अर्थात् मालिक की है। अगर धारा को यह ध्यान आ जाये कि मुझे स्वामी के पास वापिस जाना है, तो वह वापिस राधा बनकर चलेगी। जब तक वह स्वामी से नहीं मिलेगी। तब तक उसे न शान्ति मिलेगी न उसे परम अवस्था प्राप्त होगी।

गुप्त रूप जहां धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहां कोई विश्राम॥

जब राधा और स्वामी, सुरत और शब्द दो हो गये तब फिर वह असली धाम पर पहुंचकर तब तक एक नहीं हो सकते जब तक सद्गुरु की मेहर नहीं होती और यह मेहर तब तक नहीं होती, जब तक तुम प्रेममय नहीं हो जाते। यह प्रेम का रास्ता है। जब धारा प्रेममय होकर राधा बन गई तब वह अवस्था आती है—

बैठक स्वामी अद्भुती, राधा निरखनहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार॥

धारा से राधा बनकर जब राधा और स्वामी एक हो जाते हैं तब विश्राम मिलता है।

मैं आपको बता रहा था कि राधास्वामी हालत में रहने का नाम राधास्वामी गाना है। अब भगवद्गीता को गीता इसलिये कहा गया क्योंकि भगवान् कृष्ण उसके अन्दर रहते थे अर्थात् उसके अन्दर ओत-प्रोत थे। गीता में 18 सत्संग हैं। गीता के इस श्लोक में राधास्वामी परम-तत्व का भेद छुपा है।

इदं तु ते गुह्यतमम् प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

अर्जुन बड़ा प्यारा भक्त था उसको कहा— "अर्जुन! इदं तु मैं तुम्हें ज़बरदस्त छुपा हुआ गुढ़ रहस्य बता रहा हूं क्योंकि तू मेरा भक्त है। तेरे अन्दर ईर्ष्या नहीं है।" सद्गुरु के प्यार में ईर्ष्या नहीं होती। सद्गुरु का

प्यार सबके लिए बराबर होता है। लेकिन सबका नमूना अलग-अलग होता है। जब भक्त के अन्दर ईर्ष्या है वह असली भक्त नहीं बन सकता। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को आगे कहा—

'ज्ञानं विज्ञानसहितम्'।

मैं तुम्हें एकत्व का ज्ञान, स्वामी अर्थात् मालिक का भी ज्ञान दूंगा और राधा का भी ज्ञान दूंगा। 'ज्ञानं विज्ञानसहितम्' तुम्हें प्रवक्ष्यामि ज्ञान, विज्ञान दोनों पक्ष बताऊंगा। 'यज्ज्ञात्वा' जिसका अनुभव करने के बाद, तू हर प्रकार की रुकावटों से आज़ाद हो जायेगा"। परम-तत्वाधार, मालिकेकुल हमें वापिस ले जाने के लिए ही शरीर धारण करके जगत् में आता है। यही बात मैं आपको बता रहा था।

शब्द गुप्त जहां धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहीं पावई, जहां कोई विश्राम॥

विश्राम आखिरी अवस्था है और भक्त आखिरी अवस्था तब तक नहीं पाता जब तक सद्गुरु की मेहर न हो। सद्गुरु की मेहर कब होगी, जब तुम प्यार करोगे। पहिले दूर का प्यार होता है, फिर नज़दीक का प्यार होता है। यह बात आज के शब्द में भी आई है।

चल गुरु के सतसंग री, मेरी सुरत सहेली।

अब देखो! दाता दयाल जी महाराज ने सुरत सहेली

कहा है क्योंकि पुरुष तो केवल एक ही है, बाकी सब स्त्री है, राधा है।

सतसंगत अमृत जल बरसे,
सत्संग निर्मल गंग री।

अमृत जल क्या है ? अमृत जल है गुरु की वाणी। सत्संग के अन्दर जो गुरु की वाणीरूपी धारा बह रही है उसको सुनकर तुम अमरत्व को प्राप्त कर रहे हो।

वाणी गुरु है गुरु वाणी है, बाणी अमृत सारे।

सत्सग के अन्दर सद्गुरु की वाणी को ध्यान से सुनो। क्योंकि सद्गुरु की वाणी की महिमा है और वह अमृत का सार है। अब सवाल पैदा होता है कि हम सत्संग के अन्दर कैसे बठें ? कैसे देखें और कैसे सुनें ? हमारे व्यवहार के तीन तरीके हैं— (1) मन, (2) वचन, (3) कर्म। शिव-सङ्कल्प का क्या अर्थ है ? शिव-सङ्कल्प का अर्थ है कि हम मन, वचन और कर्म से शुद्ध हों अर्थात् किसी को भी हम मानसिक, शारीरिक और शब्दों से भी दुःख न पहुंचायें। बार-बार आपको कहा जाता है कि घर में शान्ति रखो। मातायें बच्चों को पीटती हैं। बड़ा होकर बच्चा औरतों से नफ़रत करेगा। यदि बाप मारता है तो बच्चा मर्दों से नफ़रत करेगा। किसी ऋषि ने कहा है—

लालयेत्पञ्च वर्षाणि षोड़श बर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

अर्थात् पाञ्च वर्ष तक बच्चे को कुछ नहीं कहना चाहिए। सोलह वर्ष तक बच्चे को डांट-फटकार करना चाहिए। सोलह वर्ष के बाद पुत्र के साथ मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। मैं आपको दुनियां के व्यवहार की बात बता रहा हूं।

मैं आपको सत्संग की अमृतधार के बारे में बता रहा था। अमृतधार वाणी की धार हैं। बच्चे की भलाई के लिए आप पीटते भी हैं, लेकिन कटु वचन मत बोलो। यदि आप शारीरिक रूप से किसी को दुःख नहीं दे रहे, मगर कटु वचन बोल रहे हैं तो आप हिंसक हैं। वाणी की हिंसा, वचन की हिंसा, शारीरिक हिंसा से ज्यादा ख़तरनाक हैं क्योंकि कटु वचन मन से नहीं निकलता।

जैन धर्म में 'क्षमा' के ऊपर अधिक ज़ोर दिया गया है। अब लोग कहते हैं कि हमने क्षमा कर दिया मगर मन से बात नहीं निकलती। यदि आपने अपराधी को माफ कर दिया। मगर मन के अन्दर बात को भुलाया नहीं तो आप अपने आपको दुःख दे रहे हैं। दूसरे के कटु शब्द बार-बार याद करने से आपका मन दूषित हो जाता है। इस प्रकार मानसिक कर्म, वचन के कर्म सभी अधिक दुःख देने वाला है तथा ख़तरनाक व ज्यादा देर तक रहने वाला है। अब वचन जो है वह शरीरिक और मानसिक कर्मों के बीच में है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि मैंने क्यों कहा कि वाणी से तुम गुरु को

पहिचान सकते हो। जैसा मैंने आपको बताया कि मीठी वाणी शारीरिक और मानसिक कर्म के बीच में है। एक बात को हम गुस्से से भी कह सकते हैं और मीठा बोलकर भी कह सकते हैं। अगर आप प्रेम से कहेंगे तो आप से हिंसा भी नहीं होगी और आपका मन भी शुद्ध हो जायेगा। मीठा बोलने में आपके पैसे नहीं लगते। इसलिये वाणी आपके शारीरिक कर्म को बताती है और उसके अन्दर मन को भी बताती हैं। वाणी एक ऐसा दीपक है जो दहलीज़ पर रखा हुआ है, जिससे अन्दर भी रोशनी होती है और बाहर भी रोशनी होती है। इसलिए गुरु की वाणी आपको उभारने वाली है। जब मीठी वाणी से आपका मन साफ हो जायेगा तब आपको गुरु का दर्शन भी हो जायेगा। मेरे दोनों बच्चों के संस्कार मेरे जैसे ही हैं। वह कड़वा बोलकर किसी का मन नहीं दुखाते। गुरु की जो वाणी अर्थात् धारा है, वह अगम की धारा है, इसीलिये उसे 'निर्मलगंग' कहा गया है। यह स्वच्छ व विशुद्ध है। जब वह बहती है तो मुझे न समय का होश रहता है, न इस बात का पता चलता है कि मैं क्या कह रहा हूं। जब कभी यह ख्याल आता है कि सत्संग दे रहा हूं तो लगता है कि जैसे मैं अपने आपको सत्संग दे रहा हूं। यह लहर गुरु के शरीर के अन्दर आती है। अगर तुम अपनी नहर को ढीला कर दो, मन के अहंकार को दूर कर दो, तो लहर इतनी तेज आयेगी कि नहर टूट जायेगी और लहर ही रह

जायेगी। वह मौज की धारा बहती है । यह अवस्था सत्संग के अन्दर होती है । सत्संग वास्तव में निर्मल गंगा है। परम दयाल जी महाराज कहते थे— "मैं चाहता हूं कि सारे सत्संगियों को एकदम ऊपर ले जाऊं"। यदि आपको एक क्षण के लिए भी यह पता लगता है कि यह बहने वाली धारा आपके शरीर, मन, आत्मा को छू रही है, तो समझ लो कि आप ऊपर पहुंच गये। यह धारा अशुद्ध नहीं है। यह निःस्वार्थ है। वैसे गंगा है। तीर्थ स्थानों पर बहुत दूषित वातावरण है लेकिन फिर भी आप हरिद्वार, ऋषिकेश जाइये, आपको शान्ति मिलेगी क्योंकि हमारे ऋषियों ने हज़ारों वर्षों तक गंगा के किनारे पर तपस्या की है, मालिक से मिलने के लिए प्रार्थना की है। वह किरणें आज भी वहां मौजूद हैं। लक्ष्मण-झूले पर जो हवा लगती है उससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम सांस ले रहे हों। हर जी की पौढ़ी पर गंगा में डुबकी लगाने पर ऐसा लगता है जैसे सारे पाप धुल गये हों। सारा शरीर हल्का हो जाता है। गंगा में और सत्संग की गंगा में बहुत कुछ समानता है। सत्संग के व गंगा से होने वाले लाभ के चार दर्जे हैं—

(1) सालोक्य— लोग हरिद्वार में रहते हैं। गंगा के किनारे नहीं जाते, मगर गंगा की पानी कुओं व नलों के ज़रिये पीते रहते हैं। वह गंगा की परिधि अर्थात् गंगा के लोक में हैं। इसलिए उनको भी असर होता है। इसी प्रकार पहिले सत्संगी आता है और दूर बैठ जाता है

मगर फिर भी उसे फ़ायदा हो जाता है। एक शहर में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। वहां पर सत्संग होता था। ब्राह्मण ने अपने बच्चों को सत्संग में जाने के लिए मना कर दिया और कहा— "यदि तुम सत्संग की जगह से निकल रहे हो, तो कानों में अंगुलियां डाल लिया करो"। ब्राह्मण का एक लड़का जा रहा था और साधु सत्संग दे रहा था। साधु बता रहा था कि देवताओं की परछाईं नहीं होती। ब्राह्मण के लड़के ने सुन लिया। अब कुछ दिनों के बाद ब्राह्मण के घर चोर आया। चोर ने काली देवी का रूप बना रखा था। लड़के ने देखा कि उसकी परछाईं थी। उसने डंडे मारने शुरू कर दिये। चोर पकड़ा गया। ब्राह्मण ने पूछा— "बेटे! तुम्हें कैसे पता चला कि यह देवी नहीं है?" लड़के ने कहा— "पिता जी! मैं जा रहा था। ग़लती से मैंने साधु की बात सुन ली कि देवी-देवताओं की परछाईं नहीं होती"। उसी समय ब्राह्मण ने अपने बच्चों को कहा— "तुम सत्संग में जाया करो।" सत्संग में आने से तुमको वही लाभ होता है जो गंगा के किनारे या घरों में रहने वाले पण्डों को व लोगों को होता है। इसे कहते हैं सालोक्य अर्थात् एक ही इलाके में रहने का सम्बन्ध।

(2) सामीप्य— अब आप गंगा के नज़दीक आ गये। आप सत्संग में गुरु के पास आकर बैठे और आपने नाम-दान ले लिया। इसको कहते हैं सामीप्य।

(3) सारूप्य— अब आप हर जी की पौढ़ी पर गये। आपने जञ्जीर पकड़ी और डुबकी लगाई। आपके चारों तरफ पानी ही पानी हो जाता है। आपका रूप पानी का रूप बन गया। इसी प्रकार सत्संगी नाम लेते-लेते वह अवस्था प्राप्त कर लेता है, जिसमें हर एक के अन्दर गुरु की झलक दिखाई देती है। यह अवस्था जीवन्मुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था में हम जिससे प्रेम करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। इस अवस्था में 'मैं' 'तू' का झगड़ा नहीं रहता।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहि।
प्रेम गली अति सांकरी वा में दो न समाहि॥

(4) सायुज्य— अब आपने गंगा में डुबकी लगाई और आप एक हो गए। जल से बाहर ही नहीं निकले। सत्संगी इस अवस्था में मालिक में विलीन हो जाता है। सत्संग निर्मल गंगा है। इन चारों अवस्थाओं को एक पद्य में कहा है—

एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निजधाम।

इस पद्य में चार जन्म की बात नहीं कही गई है। जन्म का मतलब है कि सत्संगी इसी जन्म में कुछ समय के लिए गुरु की भक्ति करे, गुरु की मुट्ठी-चापी करे। निकट आने से प्रेम होता है। फिर कुछ समय गुरु के बताये हुए नाम का जाप करे, गुरु का ध्यान करे। इससे वह जीवन्मुक्ति

की अवस्था पा जायेगा। अर्थात् सारूप्य हो जायेगा और चौथी अवस्था में न तू रहेगी और न मैं रहेगी। यह सत्संग की महिमा है।

सत्संग प्रेम सिन्धु है सजनी,
उमड़े प्रीत तरंग री।

सत्संग तो प्रेम का, ज्ञान का अथाह समुद्र है। सत्संग में बैठने से मालिक के प्रीत की तरंग उठती है। हालांकि आप सबके अन्दर प्रेम का समुद्र ठाठें मार रहा है। लेकिन सद्गुरु के पास बैठने से जब प्रेम की तरंग उठती है तो वह दुनियावी तरंगों को रद्द कर देती है। मुझे भर्तृहरि का ध्यान आ गया। यह उज्जैन नगरी भी उन्हीं की नगरी है। कहते हैं कि वह अभी तक शरीर में हैं। वह राजा थे। ऐश-परस्ती में थे। वह अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। राजा भर्तृहरि ने तीन शतक लिखे। पहिला शतक शृंगार शतक है – भामिनी विलास— इसके अन्दर उन्होंने बताया कि गृहस्थ के अन्दर रहते हुए उन्होंने किस प्रकार काम को भोगा। दूसरा उन्होंने नीति-शतक लिखा जिसमें उन्होने बताया कि दुनियां में रहकर कैसे व्यवहार करना चाहिए। तीसरा वैराग्य-शतक लिखा जिसमें उन्होंने बताया कि दुनियाँ में रहकर दुनियां में फंसना नहीं चाहिए। असल में उनके जीवन की एक बड़ी घटना मैं आपको बताना चाहता हूं।

राजा भर्तृहरि अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे।

उनके राज्य में किसी ब्राह्मण ने बहुत बड़ा अनुष्ठान किया। उस ब्राह्मण को अनुष्ठान का अमृतफल मिला। उसने सोचा कि हमारा राजा बहुत अच्छा है। मैं यह फल राजा को ही दे दूं। यह सोचकर ब्राह्मण ने वह अमृत-फल राजा को दे दिया। अब राजा ने वह अमृतफल अपनी रानी को दे दिया। रानी महल में आने वाले एक धोबी से प्यार करती थी, उसने वह फल धोबी को दे दिया। धोबी एक वेश्या से प्रेम करता था, उसने वह फल वेश्या को दे दिया। वेश्या ने सोचा कि मेरा जीवन तो बेकार है। हमारा राजा बहुत अच्छा है। अगर वह अमर हो जाये तो कितना अच्छा रहे। वेश्या जब दरबार में नृत्य करने के लिए गई तो उसने नृत्य करते-करते वह अमर फल राजा को पेश किया। राजा अमरफल को देख-कर चौंक गया। उसने जब सारी बात का पता लगाया तो उसे वैराग्य हो गया। तब उन्होंने लिखा—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ॥
अस्मत्कृते परिशुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

जगत् में सद्गुरु के अतिरिक्त कौन सच्चा प्यार कर सकता है? राजा भर्तृहरि ने कहा कि मैं रात-दिन जिसकी चिन्ता में रहा, वह किसी और से प्यार करती है। धोबी महारानी का प्यार पाकर किसी और पर

निहाल है और यह नाचने वाली हम पर निहाल हो रही है। अरे! महारानी को भी धिक्कार है, धोबी को धिक्कार है, वेश्या को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है।

मैं आपको तरंग के बारे में बता रहा था। कौन सी तरंग है जो हमें बान्धती है? प्रेम की तरंग हमें ऊपर ले जाती है। भर्तृहरि ने इस सम्बन्ध में लिखा है—

आशानाम नदी मनोरथजला।
तृष्णा तरंगाकुला॥
मोहावर्त्तसुदुस्तरा अति गहना।
दुकूल चिन्तातटी॥
तस्याः पारंगता विशुद्धमनसा।
नन्दन्ति योगीश्वराः॥

अब प्रेम की तरंग कैसे ऊपर ले जायेगी? राजा भर्तृहरि कहते हैं कि आशा एक प्रकार की नदी है। उसके अन्दर मनोरथ रूपी जल रहता है और तृष्णारूपी तरंगें होती हैं। जैसे इन तरंगों से लोग व्याकुल हैं अर्थात् नदी के अन्दर भंवर में फंसना है। हमारी आशाएं मोह-भंवर हैं। इसको पार नहीं किया जा सकता। आशा-रूपी नदी बहुत गहरी है। नदी के दो चिन्ता-रूपी किनारे हैं। मैं कहता हूं कि सारी चिन्तायें मुझे दे दो। मगर मुझे कोई चिन्ता भी नहीं देता। शुद्ध मन वाले सन्त उस आशा-रूपी नदी के पार जाकर आनन्द से रहते हैं। अब आप इस नदी से कैसे पार होंगे? जब

आप इसी नदी में आकर फसेंगे, तो प्रीत की तरंगे उठेंगी, तो आशा-रूपी तरंगों का मुकाबला करके आपको समता की ओर ले जायेंगी। आपके लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे।

'वास सुवास मिले सतसंग, पावे रंग सुरंग री'।

जैसा कि आपको शब्दानन्द जी ने बताया कि आपको जो कुछ मिलता है वह सत्संग से मिलता है। क्योंकि सत्संग के अन्दर सत् और प्रेम रहता है। प्रेम भी एक छुत की बीमारी है और सत्य भी एक बीमारी है। जब आप प्रेम करोगे, तो दूसरा भी प्रेम करेगा। इसलिए सत्संग के अन्दर जब गुरु प्रेममय है तो आपके ऊपर भी प्रेम का प्रभाव तो होगा ही। मैं कई बार कहता हूं कि मेरे प्रेम से कोई बच नहीं सकता।

राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत,
काल करम कर भंग री।

राधास्वामी कौन है? राधास्वामी वो है जो प्रेम-मय है।

'गुरु वही जो शब्द सनेही,
शब्द बिना और नहीं सेही'।

इसका मतलब यह नहीं कि आप कानों में अंगुली देकर बैठे रहो। हम तो इसलिए बैठते हैं जिससे आपके सब काम ठीक होते रहें। 'गुरु वही जो शब्द सनेही' गुरु वह है जो शब्द में सना हुआ है। शब्द क्या है? पांचों तत्वों में शब्द आकाश है। आकाश में सब समाविष्ट हो

हो जाते हैं। ऐसा गुरु जो एकत्व में रहता है वह सबको अपने अन्दर समाविष्ट कर देता है। जिसका प्रेम व्यापक है वही शब्द सनेही है। दूसरी बात यह है कि जो प्रेम में ओत-प्रोत है, उसके शब्द, उसकी वाणी, उसके सत्संग सुनने से कभी न कभी आप कहोगे कि हमें भी थोड़ी देर के लिए अनुभव हो गया। उसकी वाणी के अन्दर ओज होगा। सद्गुरु की वाणी तुमको ऊपर उठायेगी। अगर सत्संग में वाणी से तुम नीचे गिरते हो, तो वह सत्संग किसी मतलब का नहीं।

'राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत'।

मैंने आपको कल बताया था कि राधास्वामी गुरु की संगत करो।

कोटि-कोटि करूं वन्दना अरब खरब दण्डौत।
राधास्वामी मिल गये खुला भक्ति का स्रोत॥

वन्दना का मतलब है— अपने अहंकार को मिटा देना। अहंकार हटते ही आप राधास्वामी के नज़दीक आ जायेंगे। राधास्वामी से मिलकर एक हो जायेंगे। भक्ति का स्रोत खुल आयेगा।

राधास्वामी गुरु की कर सतसंगत,
काल करम कर भंग री॥

कितनी आसान बात है कि राधास्वामी गुरु की संगत करो। संगत का मतलब यह नहीं कि तुम गुरु को न खाना खाने दो, न आराम करने दो। संगत का मतलब है कि हर समय गुरु को अपने पास समझो और गुरु के

ध्यान में मस्त रहो। मैं हमेशा तुम्हारे पास हूं। मेरी प्रेम की धार से कोई बच नहीं सकता राधास्वामी सद्गुरु की संगत करने से तुम्हारी संगत भी वैसी ही हो जायेगी और इस जीवन अन्दर तुम्हारे लोक और परलोक दोनों बन जायेंगे। यह सत्संग की महिमा है, जिसे आज मैंने आपको बताया। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूं।

॥ सबको राधास्वामी ॥

महत्वपूर्ण सूचना

सभी सत्संगियों को सूचित किया जाता है कि मानवता मन्दिर के आफिस में एक और TELEPHONE लग गया है।

जिसका No. 01882-27266 है।

अगर कोई सत्संगी भाई किसी भी विषय पर जानकारी लेना चाहे तो कृपया उक्त दिए गए TELEPHONE No. पर सुबह 6 बजे से रात 9 बजे तक सम्पर्क कर सकते हैं।

Before 8 a. m.
After 9 p.m.
32076 जनरल सैक्रेटरी

जनरल सैक्रेटरी
मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।

परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हुजूर मानव दयाल जी महाराज का दशहरा सत्संग दौरा 1997

25-9-97	अम्बाला सत्संग प्रातः 10 बजे	श्री कृष्ण लाल पवन कुमार शिव मन्दिर शक्ति नगर (मानव चौक के पास) अम्बाला शहर
25-9-97	अम्बाला से प्रस्थान शाम को यमुनानगर पहुंच	
26-9-97	सत्संग शाम 5 बजे	श्री रमेशचन्द्र गोयल 115 शास्त्री कालौनो यमुना नगर
27-9-97	प्रस्थान सरसों हेड़ी सत्संग शाम 5 बजे	रिटायर्ड इन्जीनिय श्री देवदत्त त्यागी ग्राम सरसों हेड़ी सहारनपुर
28-9-97	प्रातः मुजफ्फर नगर के लिए प्रस्थान सत्संग शाम 5 बजे	श्री रुपेन्द्र बत्तरा 39 काजियां लोहिया बाजार मुजफ्फर नगर
29-9-97	सत्संग प्रातः 9 बजे	

30-9-97	प्रातः मेरठ के लिए प्रस्थान सत्संग शाम 5 बजे	श्री ब्रह्म सिंह जी सी 48 डिफैन्स कलौनी
1-10-97	सत्संग प्रातः 9 बजे	मवाना रोड़, मेरठ
2-10-97	गज़ियाबाद सत्संग प्रातः 10 बजे	श्री कृष्ण स्वरूप सूद 2/27 सैक्टर—5 राजेन्द्र नगर साहिबाबाद ज़िला गाज़ियाबाद
3-10-97	सत्संग दुर्गापुर प्रातः 10 बजे	श्री गुरुदत्त शर्मा ग्राम दुर्गापुर प्राइमरी पाठशाला पोस्ट ओफिस पलवल ज़िला फरीदाबाद (हरियाणा)
4-10-97	अलवर के लिए प्रस्थान शाम का सत्संग शाम 5 बजे	श्री मूलचन्द गान्धी 455 Nawab Pura Near Viveka- nand Chowk अलवर
5-10-97	प्रातःकाल का सत्संग	Ph. No. 338113
5-10 97	भीलवाला के लिए प्रस्थान	श्री तेजेन्द्रमणी गुप्ता सन्तमत सत्संग केन्द्र

6-10-97 से 8-10-97	भीलवाड़ा में सत्संग शाम 5 बजे प्रात: 9 बजे शाम 5 बजे प्रात: 9 बजे	1-A-5 हाउसिंग बोर्ड शास्त्री नगर भीलवाड़ा राजस्थान Ph. No. 22237
9-10-97	देहली के लिए प्रस्थान	
10-10-97	सत्संग प्रात: सायं	सालवान पब्लिक स्कूल पुराना राजेन्द्रनगर नई दिल्ली
11-10-97	आशीर्वाद सत्संग प्रात:	सालवान पब्लिक स्कूल पुराना राजेन्द्र नगर नई दिल्लो

नोट — 1. हजूर महाराजाधिराज की अगवानी के लिए हर एक सत्संग-केन्द्र संयोजक कृपया प्रोग्राम के अनुसार अपने ऊपर वाले (पहले) सत्संग-स्थान पर समय से पहुंचने का कष्ट करें। अगवानी के लिए न पहुंचने पर तत्सम्बन्धित का सत्संग-प्रोग्राम निरस्त किया जा सकता है।

2. प्रोग्राम में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की सूचना दे दी जायेगी।

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

Wednesday, 10th September, 1997

MANAVTA MANDIR
HOSHIARPUR (Pb.), India.

DAYAL YOGA

PART II

TEACHINGS IN BRIEF (GLIMPSES)
SANT MAT
(RELIGION OF THE SAINTS)

Data Dayal Maharishi Shivbrat Lal Varmanji Maharaj

We may be dubbed as criticis which we know we are and are not. People who criticies a critic do not know the meaning of the word critic. Let us remind them of what Sant Kabir has said in this regard. "He enjoins that the critic must be kept near at hand. It necessary by constructing a cottage in one's own compound, for he cleanses the minds cobwebs without having recourse to soap and water". If we are permitted to say,

"The Adi Saint was Himself a most highly refined and cultu·ed critic". Most of His Shabdas are correctives. Some out spoken and others subtly balanced. A critic with depth of self realisation alone can understand the symblical language of the Saint. Just read His original. Shabdavali and there will be found the truth of our humble submission. The critic is a very subtle-cum-spiritual entity. The institution of honest critics is as old as santmat. It existed in the pre-Vedic period. People have short memories. They seem to have forgotten the Greatest and subtlest critic was in the Divine Personality of "Brahaspati" who lived in the pre-Vedic era. It was within his power to make anything from nothing

We do not wish you to understand us. Though nothing comes out of nothing but we think otherwise. The Teachings of Data Dayal and our own on feelings is such. We say the soul is both Omniscient aud Omnipresent. We say our boy is in us and we are in him. Does he not think so ? Yes, he may think so, but he may not feel so. Feeling with consciousness he lacks. Conscious-

ness comes out of feeling and intuition or inspiration is the out-come of consciousness. At this stage we mean inner and innermost consciousness and not the ordinary consciousness of vision, taste or touch etc, Realisation can be full or partial, imperfect or perfect, complete or in-complete. Extremes always meet. The means remain means but do not become extremes. All means get dissolved or lose their identity in the extremes, just as time comes when all means come to an end. Therefore those who are extremists in spirit and essentiality, or in any thing, attain their objective. Likewise, It should not matter, if the critic is hard, harsh and terse but he should be free from malice, ill-will and personal motive. Let it go home once for all criticism is a necessary and vital need at all times, and to make it wroth-while it must have depth. A critic in religious lore must have feeling of "self" realisation based on intuitional intuition and not on personal motive. We admit we are genuine critics, and our criticism is not from a selfish angle.

We reached this stage long long ago when we

did not approve our kith and kin to eulogise us directly or indirectly, for it belittles the status of our kith and kin. Besides the motive, they entertain drags them to the pit-fall of pride and greed. Pride has a fall and is an egoist tendency. Selfishness mothers all evils. People may ask why must we bother about our kith and kin belittling themselves ? The answer is simple. It is possible in our weaker moments we may lose our equipoise. No one can claim perfection. Perfection comes with Saints Yoga in Turiya. If our elder were the boss of a certain large Corporation, we must not trade our wares under his protective banner. Why must we take undue advantage of the greatness of our living or dead elder or younger relative. It is neither ethical nor allowed in Santmat.

We draw the attention of the followers of the faith to a corrective Shabda (Hymn) entitled "Just Ponder, look a head and then take measured steps lest you stumble on the dedicate path of the Saints". We read it some 38 years ago and cannot quote, nor have we the small pamphlet with us. The sword is one edged only. The Katar is double

edged. The path of Santmat is akin to a flat sword with thousands sharp edges on its flat surface. The follower has to tread this path by head and not by foot. So man must think thrice before he speaks and weigh all ideas carefully before executing them. The quest for popularity, name, glory financial and physical help even for relatives is strictly forbidden. What we see is quite the reverse. Should the votari remain mum and accompany the band wagon in the hope, the order will change. We leave it at that. Santmat is not so cheap a commodity. It has to be purchased at a very high price called practical life of freedom without the liberty of freedom. Santmat is the heritage of those who "do or die" and do not preach, but act. They do not let their left hand know what their right hand does. The interpretter in us is not a copiest nor a borrower of ideas. We have been blessed from early child-hood by the Great Master and now by Bhaijee Maharaj—our benefactor.

The Royal disciple (Bhartri Hari) was followed by his disciples. Their method gives some sort of indication of the sound principle. Then appeared the Foremost Saint Kabir in 1398 A. D. after a

long gape of time. He manifested at a time when there was neither stability, nor safty for the people of the North in particular and North-West and Central Bharat. Every part of the country was in a state of panic. There was disharmony, discord, discontentment every where. It was the time when all seemed lost. No one was happy. More details of devastation, disturbance, and heart rending tales of misery, sufferings and terror are not necessary. It will suffice to say temples were raised to the ground, Pious and holy pilgrims were put to the sword. The Great Teacher Kabir was the the Light that attracted those, who were affected with the then disturbed conditions, towards him for spiritual consolation. His mission was most significant. He was a Muslim (Weaver) His low caste and origin did not deter Hindus and Muslims alike to flock round him for spiritual solace. He Was accepted and acknowledged as an incarnation of Truth 5nd Love. People from North, South, East and West sought and found refuge in His Fearless Holy Teachings of Shabd Yoga and the moral code He adopted. He was so fearless that he announced to the whole world "I have brought

a message from Almighty and I hold the secret of the topmost spiritual Abode". Such an utterance in those times was a taboo. But after a little resistance from the highest, middle and low strata of humanity, all yielded to the Greatest Saint and followed His teachings all over the country. He restored order and thus served the humanity. He is remembered and revered ever since. His name shall ever live in Santmat. He has left behind His Hymns, which are a treat to the spiritualists of the world. His teachings are unique and most inspiring. He had followers all over. He disclosed the method of Shabd Yoga to the world at large Himself and through his disciples. He however did not disclose the real reality of what passed between the Master and the disciple. It is still not known. It is as it should be.

He was followed by many spiritual teachers. All have been detailed in another work including Gurus and saints before the manifestation of Sant Kabir. We give some names of the greats who followed Adi Sant Kabir. The chief one was Guru Nanak Dev who gave solace to lakhs and lakhs.

He believed in one Supreme Head. He enjoined practice of Yoga to His disciples. He method was of Prem and Bhakti (Love and devotion). He preached "ALL IS HIS" He was succeeded by the ten Gurus in the Punjab. There were others. They all carried out the mission of the previous teachers. Every one taught the disciples in a mystical way. There are written works here and there. But these works do not throw any light to decipher exactly what was taught. Glimpses of Light and sound are there. But that is not enough to know the real secret. Many teachers of Santmat of yore knowingly resorted to such practices and devices which barred the association of those who were inquisitive and not worthy from the spiritual point and or were likely, to create disturbance in the minds of devout followers who were on the right path. We are aware many who were curious of ten flocked around such spiritual teachers. But they were not admitted to the order. Even if they did get a foot-hold; they themselves quitted or were caste away when they were found to be after name and fame. The Gurus took all precautions that unworth did not cause any mischief or disturbance

which would retard the spiritual progress of the honest initiate.

The August Swami jee manifested in the last Century. He started the school of spirituality in earnest. He established permanent Sat Sang. He preached Surt Shabd Yoga and laid down a moral code. It was he, who, for the first time openly gave indication of this Yoga and taught the disciples the way to practice it. He himself conducted Sat Sang for the benefit of followers. What was the real aim and object of Kabir Saheb, was brought in vogue by the August Swami Jee. He sang the glory of shabda (sound which means Light as well). He caste away all external rites, rituals, ceremonials and observations. He united all castes, creeds and faiths. He gave freedom to all to join the faith of the Saints. He founded the Radha Swami Faith which in reality is nothing but Santmat. After Him his disciple-in-chief Param Sant Hazur Maharaj Rai Saligram Bahadur, image of Dharma, morality, truth and piety took it upon himself the role of conducting Holy Satsang inaugurated by the August Swami Jee. He continued it day and night and

gave spiritual solace to lakhs and lakhs in his life time. After him Data Dayal Maharishi Shiv Brat Lal Jee Maharaj collected all the old and scattered knowledge of Santmat and gave it its due and proper shape, form and uniformity. We have written about this aspect at length earlier. He held holy discourses, sermonised and showed the way "How to practice Surt Shabd Yoga". He took considerable interest and over exerted himself to enlighten the path of each and every disciple with the knowledge of the Yoga which had been kept alive from generation to generation and from soul to soul. His followers are countless, so were his admirers. He was all Love. kindness, virtue, Piety and truth. He emancipated thousands and thousands. All who went to him returned happy at heart and peace in soul. The areas of the North, North West, Uttar Pradesh, Rajasthan, Hyderabad Deccan and some other places were inundated with his teachings and written word. Even those who did not follow Santmat took delight in his works and yearned to read and re-read what he wrote. The educated section of the society in particular has received much benefit from Data Dayal's teachings. He redeemed

thousands. The illiterates received his benedictions in person and were given all the knoweledge required to practice Yoga. Those who were situated at far off places were taught through correspondence. He has perfected the system in such a way that an earnest seeker of knowledge of self and the Divine origin feels at ease in his practice. It is like going to a new residence where one finds every conceivable item of furniture, eatables, beeds, matresses and servants to cook, feed and render all possible help at the slightest indication. Could a would be practioner ask for more ? He has only to make the effort with an iron will and unshaken faith in himself and his Preceptor. If he does so, the salvation comes into his vision step by step. That is what you will find in Dayal Yoga as we proceed. Bhaijee Maharaj has put life into it.

Santmat is the essence and essentiality of all knowledges and sciences. It is a faith which is Omniscience and Omniscient. The Saint's Surt Shabd Yoga means "Light and sound" principle which in turn is omnipresent.

A little clarification at this stage is needed.

Surt means attention, the manifestation of spirit entity called Shabd is "Sound". (word Breathings of Nature — Breath is all pervading same as sound called also Udgith or celestial song-spirit current) inside. This is felt by the practioner when he performs the devotional practice of Yoga. This Yoga is ascention from the lower region of the body to the mental region upwards and thence to the higher spiritual centres within. Its purpose is to raise the spirit to the Fourth condition step by step with the guidance of the Guru—which remains a sealed Book. The Holy form is the ideal; Holy Name helps in forming the ideal; both together aid in audition of the Holy Song (Sound) which comes from above. It is this audition which raises the spirit upwards to Dayal, the Merciful—where disembodiment of the soul takes place and it castes away its individuality. Man is re-deemed while living i. e., in his life time. That is Santmat and that is the divine gift what the practice of Surt Shabd Yoga bestows on man.

Realising the sad and miserable condition of mankind knowing the treacherous affects of distinction, differenciation, discord, discord, disunity, hate

and greed the saints proposed and taught he practical method of Yoga.

That is Santmat and essence of its teachings. It makes man perfect or Man Entire Whole and in every thing.

NOTE— This part has been written to emphasise the import of Santmat. What is contained herein wili be found in glimpses in other parts as well. It is hoped the repetition here and there will interest those who desire to know the truth.

THE MASTER SPEAKS TO THE FOREIGNERS

Param Sant Param Dayal Pandit Faqir Chand ji Maharaj

MANAVTA MANDIR
HOSHIARPUR.

19th August 1978

There are four kinds or egoisms in us (i) Egoism of Physical Form. (ii) Egoism of mental form. (iii) Egoism of Light form and (iv) Egoism of Sound form. I ask my self, what have I attained ? Silence in the begining and slience In the end. Whatever is happening, it is all His Will. Every Philosopher or saint who came and made inward search for realisation wrote experiences. But their followers in order to gain fame and name and to collect wealth kept this as secret from the general public. Though to keep the Secret was necessary in those days, but, it is not required now. To-day,

humanity has been divided into different sects and religions. Every day there are communal conflicts in the world. Hindus and Muslims are fighting and Arabs and Jews are fighting. Therefore, after realising the SECRET, I raised the Slogan of BE-MAN. Why ? My spiritual Father had told me, "Before leaving your physical frame, change the teachings. 'So, I have changed the teachings. No one on this earth, he may be Christ, he may be Radhaswami, he may be Kabir or he may be any body, none has the right to say that he has understood the REALITY in all respects. That power is bigger, bigger, bigger, bigger and bigger. Our senses cannot reach there. This is what I have understood, So, I pass my life helping others, serving the poor and preaching the truth. I have three free hospitals here. To, General public, I preach the art of living a happy life.

You sleep and you enter the state of dream. In dream, you feel angry with one. You hit him in the dream. Your hand in that state of dream is moved. You are frightened in your dream you speak and your tongue is moved. You create a women in your dream and you enjoy sex with her.

Your semen is discharged, These are the effects of the thoughts of your dreams, which are not in your control. It proves that the thoughts of your mind are capable to have effect upon your body.

In the state of wakefulness, we hate others and we keep enmity with others. All that we do in our state of wakefulness, with our own will, it must have its effect upon us. I have proved to you that if involuntary thoughts can effect our body why not voluntary thoughts should have their effect upon us. So, what I my self practise, I advise others to adopt in their lives. Always be optimistic. Do not harm others for your personal benefit. Do not think ill of others. This is one thing which I preach. Second y, if any body wants, that he should not come to this earth again in any form or in any other life, For such people I have TRUTH with me.

Mr. Mark— What is that TRUTH.

His Holiness— Doctors of Switzerland, France, U. S. A., U. S. S. R and U.K. have made an experiment. They put a dying mar on a very sensitive scale. When that man died something came out of his body. They saw that object which came out of

the body on a screen which was applied with some solution, so that they could see the subtle object on that particular screen. At the time when that object or soul came out of the body, the weight of the body decreased by 15 or 20 grams. It proves that should has weight. Any thing which is weight-ing cannot go beyond the gravity of earth. So, if any body wants that he may not come again on this earth, then the only alternative for him is that he should not hav. any attachment or love with anything which is made of gross matter. Because when mind loves any thing made of gross matter, it becomes weighty. So far those, who want that they may not come in different lives again, they before their death must not keep any attachment with any thing what so ever i. e gross matter. In this gross matter are included, Father, mother, wife, children, Faqir Chand's body, my Ashram, Jesus Christ who was born to Miss Mary in Jerusalaum, Ram who was born in Ayudhiya and Krishna of Vrindaban. So, So, if any body wants not to come in this world again, he must not keep his attachment with any such gross matter, but should develop his attachment only with Light and Sound within

Light within is the Feet of the Real Master and sound inside is the real Master the Guru. And beyond that is thy oneself, So, I say that the Real God does not LIVE here as the Sun does not LIVE here. Only its rays come here on this earth. If the Sun comes near the earth, we all shall be burnt. So, if that Real God comes hear, who is all in all, there will be nothing, but only the LA-ILLAHA IL-LILLA. If any body wants to serve or pray to God instead of going from place to place, one should serve mankind, Because every man's real-self is a part and parcel of that Supreme God, the supreme-Being and the PERFECT-Infinity, which has come in the trap of TIME or ILLUSION i. e. KAAL and MAYA. I think you have understood what have said. This is the experience of my whole life.

As far as the inner stages are concerned, those are opened to the seekers according to the quality and quantity of nature of which they are made of. Suppose, if a man is impotent from his birth, what can anybody do to him ? Though he cannot enjoy sexual pleasure, yet he can pass his life well. He may be deprived of his sexual pleasure, He can reach

the goal of life, So, every body can not see or enjoy the bliss of inward stages. Every body's nature and thoughts are different, Similarly inward scenes and views are different from man to man. But the Real Goal is the same. You have come and because you will be going back, I have told you my life experience in short.

I would like to say one thing more. When I am alone, I ask my self, what have you gained ? I have gained nothing and I have gaind every thing. I have got no desire to achieve now. Because I have realised, that I am a bubble of super consciousness. That Supreme Power has created this Universe. Our body is made of vitamins and minerals. Thoughts we take from outside and some bud out from within. Life is nothing but a dream. There is only one Truth, which is always one and only one. After this realisation, I have got PEACE. Due to my past Karmas I am still alive, I do not know that how long that power shall keep me in this body. I have long desire that after my death, if I go anywhere, I may be able to tell the world what happens to me after death. This is my only desire.

Mr. Mark— Where do you think, you will go after death ?

His Holiness— So far, my realisation is concerned, buble will merge in the ocean. Light will merge in the Light. But, whatever, I have thought and whatever I have said that will remain in this Universe. Because matter is never destroyed. Whatever, I am talking now, it shall remain in this room.

Mr. Mark— When you hear the Purest Sound and see the purest Light, what colour is of that purest Light ?

His Holiness— That Light is white. There are different colours and kinds of Lights within. As the sun shines in the morning it looks red. In the evening when it sets, we again see it red. It is due to clouds, dust and other particles, that are in the sky which make us see the as red, otherwise sun is not red. It is all white. Similarly the red light of Soul (Atma) is white. Because we have desires, they cover our souls and according to the desires of the worldly things, the light is different.

Mr. Mark— The most purest Light is White.

His Holiness— I cannot say it as white. But I can say that it is more than white.

Mr. Mark— And the Sound.

His Holiness— Yes, sound, I used to listen, bells, thunders of cloud and Veena. But, now I listen only one sound, which is an unbreakable tune, about which I cannot say any word. It is what it is. But what does it give to me ? It gives peace and bliss. Now at this age of 92 years I do not care for the Sound and Light too. Why ? Because Light is seen by ME and Sound is heard by ME. Then who is great ? Light or Sound or He who see it and listens it ? Who is great ? Light is great or I am great ? Sound is great or I am great ? The self of mine is the supermost Element of consciousness in my body. If that is not there then sound is of no value and light is of no value to me. That is what I have realised. I do not know about myself, brother, what will be my end. You have come from America. Whatever I have realised I have told you.

Now, after having a long experience of my life I feel that most of the past Mahatmas and the

present Gurus by keeping the secret Truth unrevealed-undisclosed have been unfair to the public and have often exploited them. They have taken undue advantage of the ignorance of the people. They have built their own big buildings. They have made air-conditioned room for themselves. These Gurus enjoy themselves and the poor people being ignorant give the hard-earned money to these Gurus at the cost of their comforts and those of their children very hardly and they offer it to these Gurus. I do not deny I receive donations, but I personally do not use even a single penny out of these donations. My own son is well-placed. He draws about Rs. 2500/- per month. He is a big metallurgist, Russia returned.

Mr. Mark— Yes, what does he do ?

His Holiness— He is at Bhilai Steel Plant as a metallurgist So, I have my own means of earnings. Whatever is received here in the form of donations, is spent for the ailing poor and on publications, published by the Mandir. My publications are distributed gratis.

Daily, I receive a lot of mail and some people

write that my form seen by them as a version has done this for them. But I am ignorant of all that. Whatever, sometime I say to some body, comes out true, and he thinks that I have done it. But this is wrong. I have not done it.

Mr. Mark— Then, should one have a Guru ?

His Holiness— Guru mean's KNOWLEDGE, without Guru, we cannot achieve anything Our Mother is our Guru, our Father is our Guru, our Friend is our Guru and the world around us is our Guru. But the REAL-GURU who makes the SELF free from the bondage of this world is called the SAT-GURU. An enternal Sat Guru. And to attain the REALITY the Sat Guru must be a perfect man. Now a days this Guruism has become a source of earning livelihood

(CONTINUED)

MAN'S SEARCH FOR ETERNAL TRUTH

H. H. Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

Toward the close of the Greek and Roman period and the beginning of the medieval period, a similar amalgam of spirit and reason intuition and intellect religion and philosophy, appeared in Saint Augustine. But subsequent philosophy in the Middle Ages was subordinated to theology, and reason, in the Aristotelian sense, was subjected to faith. Aristotle had admitted, with Plato, that reason in man was the reflection of the divine element, but stressed its practical utility in understanding the physical world. He purposely neglected the spiritual aspect of human personality and, thus, started a trend toward the dichotomy between the empirical and spiritual worlds. As a result, theologians in the

Middle Ages, fearing secular intellectual growth, subordinated philosophy to religious tradition. Prior to this time, philosophy had been inspired by the spirit of true religious experience. The attempt of the theological philosophy was to derive inspiration from philosophy to establish a stronger foundation for traditional religion. A multitude of logical proofs for the existence of God were propounded, and Aristotle's theory of causation was commissioned to prove that God is the final and efficient cause of the world. Philosophers in their eagerness to justify theology, ignored the fact that reason is finite, and no intellectual exercise can comprehend completely the nature of an infinite God.

Reason can neither prove nor disprove the concept of God as Final Cause, any more than it can resolve whether the hen or egg is first cause, but the conflict between reason and faith had a twofold effect on the history of Western philosophy. First, it brought about the suppression of objective reason and the reduction of philosophy to a secondary status of handmaiden to religion. In other words, the impossible attempt was made to give secular reasons for spiritual truths with the stipulation added

that in matters of conflict, religious authority be accepted as final.

The second effect, which was the outcome of this liaison, was the invention of the theory of double truth—the truth of reason and the truth of faith—nururing a split personality which lingers even now in Western philosophy. However, any recourse to the segregation of the truth, the division of basic reality into any kind of dualism, is bound to be abortive in the end. For the concept of "unity in diversity" is not purely intellectual. It is the result of dynamic spiritual experience which academicians have always lacked.

In the ensuing reaction to the suppression of reason by the medievals, modern thinkers enthusiastically infused a spirit of freedom from all religious presuppositions into an independent philosophical discipline. The methods of honest doubt and pure analysis were advocated by such men as Bacon, who said that dispassionate induction would lead to the objective knowledge of the external world, which would ultimately lead to the control of nature. So far as the knowledge of the changing, moving, physical world of time and space is con-

cerned, his observation was flawless, an h s fore-cast has come true. But the hidden pow r of the human psyche, lies unexplored and unut lized awaiting another Bacon to advocate a method, not of analysis, but of intuition.

Bacon also encouraged the dualism of science and religion, philosophy and theology. He inspired the British empiricism of Hobbes and Hume. Both of these radical philosophers can recogniz d as the pioneers of skepticism of the Western World. This skepticism is, to a great extent, responsible for the rad cal trenos in modern theology.

The philosophy of rationalism opposed the empiricism of Hume, but passed through various phases, beginning with Descartes, who has beautifully defended the concepts of self and God. It culminated in Kant, the great German philosopher of the modern period. Uufortunately, Descartes, who seems to have had some background in spiritual experience, overemphasized the dichotomy of body and mind, an matter nnd spirit. Kant was a more profound thinker than Descartes, but had the disadvantage of being purely academic in his attitude,

although he did at times affirm faith in spiritual concpts. His greatest contribution in dispelling the skepticism of Hume was to give practical and ethical arguments for problems of the existence of God, the freedom of will, and the immortality of the soul. However, he divided the domains of knowledge into two watertight compartments—the domain of science and the domain of religion—and his insistence on maintaining the theory of double truth was disastrous.

Kant's claim that we cannot do without the concepts of God and soul, freedom of will and immortality, but at th- same time, we cannot prove their existence in the realm of pare reason, has given Kant the appearance of an agnostic—withholding final judgment on the existence of the spiritual realm of God and soul. However, he went on to say that we should not reject the notions, since these concepts must be accepted on pragmatic grounds as necessary presuppositions. The same philosophic attitude is held by many American pragmatists.

Pragmatism is the philosophy of "working value". Its criterion of truth is practical utility—we accept an idea as true as long as it works, as long as it

satisfies our need. Thus, God may or may not exist in reality, but we accept the concept of God because we cannot live successfully without it. Pragmatism may be a very successfull philosophy for the economics of humaan life but in the realm of spiritual experience, it is a great handicap, since this experience is a link between the world and spiritual truth, and without an inner realization of this truth, mere pragmatic tests fail to give any insight. One of the great weaknesses in religion is the acceptance of God as Father and Person, on primarily pragmatic grounds. God or Truth, as an impersonal basic reality, is accepted in the realm of science on the same basis.

Science remains contented with a disinterested search for truth, until ultimately it is faced with ethical problems. It must also settle certain issues with religion. Psychology is forced to consider the psyche, which embraces the conscious, the sub-conscious, the unconscious and the paraconscious levels of mind. Similarly, the physcicist's concepts of infinitude and omnipresence conflict with the notion of a personal God. Pragmatism ultimately fai's to resolve these issues. This results in the dichotomy of

truth and opposing theories which distort the truth. The radical theologians deny God by declaring His death. The radical traditionalists stick to the literal interpretation of the Holy Bible, shutting their eyes to any scientific truth. Thus, they bring about an absolute schism between science and religion, philoso-phy and theology.

Edgar Cayce was able to avoid this extreme polarization of thought because his contact went beyond both the finite world and the personal nature of God to their mutual infinite source. As a keenly intelligent, well-founded Christian, he was never unfaithful to his religion. Actually, he has, through his work, strengthened the scientific and philosophic foundations of a true universal Christianity. His philosophic, metaphysical, and ethical notions are consistent with religion and coherent with scientific and philosophic theories. He whs not an academic philospher, nor a radical traditionalist, but his read-ings are an answer to both. His notions are not the mere outcome of reason, but they tally with the con-cepts of great philosophers, spiritualists and Scientists because they come from his psyche, attuned to univer-sal knowledge. He could draw upon that source of

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

spiritual energy which is the core of man's being. Wherever a man searches for truth, the recognition of that truth always emanates from the soul, the infinite aspect of the finite personality.

When the intuition is honored, and when the inner experience corroborates the external observation, the diversity is understood in its right perspective. Differences and duality are not abolished, but an insight into the underlying unity weaves a coherent and consistent pattern into the differences. Truth is then established as an organic whole of various interrelated parts, which are neither mutually exclusive nor absolutely independent. Reality is fundamentally one and essentially eternal.

शुभ सूचना

सभी सत्संगीजन को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि इस वर्ष दशहरा सत्संग दौरा कार्यक्रम ता. 25-9-1997 से आरम्भ होकर ता. 10 एवं 11 अक्टूबर 1997 को सदा कीं भान्ति सलवान पब्लिक स्कूल, ओल्ड राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली के प्रांगण में समारोहपूर्वक सम्पन्न होगा।

सत्संग एवं आशीर्वाद समारोह आचार्य शिरोमणि हजूर विजय नरेश नेगी जी महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न होगा, जिसमें आचार्य शिरोमणि के अतिरिक्त मानवता के सभी आचार्यगण देश के कोने-कोने से पधार-कर अपने आध्यात्मिक अनुभव सम्पन्न सत्संग और प्रवचनों से समस्त संगत को कृतार्थ करेंगे।

प्रेमी सत्संगीजन से सादर सप्रेम अनुरोध है कि इस शुभावसर पर सत्संग समारोह में पधारकर आध्यात्मिक लाभ उठावें और लोक-परलोक जीवन सुफल करें।

सत्संगीजनों के ठहरने तथा भोजन को व्यवस्था सत्संग सभा की ओर से की गई है।

विनीत :
जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।

BOOK POST

Regd NO. 26265/74 SEP 10 th 1997

MANAV MANDIR

आरोग्य, मानसिक, कारण, सुख

Address

1118. Sh. K. Venkateshwarlu,
H.NO.13-2-117, Anand Bhawan,
Matwada/WARANGAL.506002.A.P.

H/E

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD
HOSHIARPUR-146001 PHONE 22639

WARANGAL

Shiv Dev Rao Press manavta mandir (Pb.)